रत्नस्तोक मंजूषा

संकलन–सम्पादन

धर्मचन्द जैन

रजिस्ट्रार-अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

–: प्रकाशक :–

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक : अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

रत्नस्तोक मंजूषा

संकलन–सम्पादन

धर्मचन्द जैन

रजिस्ट्रार-अ.भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

:: प्रकाशक ::

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक : अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

पुस्तक :

रत्नस्तोक मंजूषा

प्रकाशक :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर,

बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.)

फोन : 0141-2575997

फैक्स : 0141-4068798

Email : sgpmandal@yahoo.in

द्वितीय संस्करण : 2007

तृतीय संस्करण : 2012

चतुर्थ संस्करण : 2016

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

सम्पादक :

धर्मचन्द जैन

अल्प मूल्य : **10/-** (दस रुपये मात्र)

लेज़र टाईप सैटिंग :

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

मुद्रक :

अन्य प्राप्ति स्थल :

- **श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ**
  घोड़ों का चौक, **जोधपुर-342001**
  (राजस्थान)
  फोन : 0291-2624891

- **Shri Navratan ji Bhansali**
  C/o. Mahesh Electricals,
  14/5, B.V.K. Ayangar Road,
  BANGALURU-560053
  (Karnataka)
  Ph. : 080-22265957
  Mob. : 09844158943

- **श्री प्रकाशचन्दजी सालेचा**
  16/62, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड,
  जोधपुर-342001 (राजस्थान)
  फोन : 9461026279

- **श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा**
  ''रत्नसागर'', कलेक्टर बंगला रोड़,
  चर्च के सामने, 491-ए, प्लॉट नं. 4,
  जलगाँव-425001 (महा.)
  फोन : 0257-2223223

- **श्री दिनेश जी जैन**
  1296, कटरा धुलिया, चाँदनी चौक,
  दिल्ली-110006
  फोन : 011-23919370
  मो. 09953723403

प्रकाशकीय

थोकड़ों का जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। ये हमारे आध्यात्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि में सहायक हैं। इनके अध्ययन से हमें आगम के अनेक गूढ़ रहस्यों व सार तत्त्वों का परिचय प्राप्त होता है, मन सावद्य योग से निवृत्त होता है तथा जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित धर्म पर श्रद्धा बढ़ती है।

तत्त्व ज्ञान हेतु यद्यपि 32 आगमों में विशद् विवेचन दिया गया है, परन्तु आगमों को पढ़कर उसके अर्थ एवं मर्म को हृदयंगम करना अधिकतर लोगों के लिए बहुत कठिन होता है। अत: हमारे पूर्वाचार्यों ने महती कृपा करके जिज्ञासु एवं मुमुक्षु बन्धुओं के लिए आगम के सार रूप में सरल सुबोध भाषा में थोकड़ों का निर्माण किया।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा थोकड़ों की विभिन्न पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में 10 थोकड़े प्रकाशित किये जा रहे हैंह्न(1) रूपी-अरूपी, (2) श्वासोच्छ्वास, (3) योनि, (4) विरह द्वार, (5) पाँच देव, (6) 98 बोल का बासठिया, (7) 14 गुणस्थानों का बासठिया, (8) 32 बोल का बासठिया, (9) 102 बोल का बासठिया और (10) तेतीस बोल का थोकड़ा।

इस पुस्तक के माध्यम से सुज्ञ जिज्ञासु पाठकों को जैनागमों के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को समझने में सरलता होगी। थोकड़ों के अध्ययन से पाठकगण अपना जीवन परिष्कृत और उन्नत कर मुक्तिगामी बनें, इसी मंगल भावना के साथ......

:: निवेदक ::

पारसचन्द हीरावत	**प्रमोदचन्द महनोत** **पदमचन्द कोठारी**	**विनयचन्द डागा**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	रूपी-अरूपी का थोकड़ा	1-5
2.	श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा	6-9
3.	योनि का थोकड़ा	10-12
4.	विरह द्वार	13-22
5.	पाँच देव का थोकड़ा	23-31
6.	अठाणु बोल का बासठिया	32-39
7.	चौदह गुणस्थानों का बासठिया	40-43
8.	32 बोल का बासठिया	44-46
9.	102 बोल का बासठिया	47-58
10.	तेतीस बोल का थोकड़ा	59-92

रूपी अरूपी का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 12 उद्देशक 5 के आधार से रूपी-अरूपी का थोकड़ा इस प्रकार है--

1. चौस्पर्शी रूपी के 30 भेद-अठारह पाप, आठ कर्म, कार्मण शरीर, दो योग (मन, वचन), सूक्ष्म पुद्गलास्तिकाय का स्कंध। ये तीस भेद चौस्पर्शी रूपी के हैं। इनमें पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, चार स्पर्श-शीत, उष्ण, रूक्ष (लूखा) और स्निग्ध (चौपड़िया) पाये जाते हैं[1]।

2. अष्टस्पर्शी रूपी के 15 भेद-छह द्रव्य लेश्या, चार शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस), घनोदधि, घनवाय, तनुवाय, काययोग, बादर पुद्गलास्तिकाय का स्कन्ध (इसमें द्वीप, समुद्र, नरक पृथ्वियाँ, विमान और सिद्धशिलादि सम्मिलित हैं)। ये 15 भेद अष्टस्पर्शी रूपी के हैं। इनमें पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और आठ स्पर्श पाये जाते हैं।

3. अरूपी के 61 भेद-18 अठारह पाप की विरति (त्याग), 12 उपयोग, 6 भाव लेश्या, 5 द्रव्य (पुद्गलास्तिकाय को छोड़कर)

---

1. यद्यपि पुद्गलों में दो तीन आदि स्पर्श भी पाये जाते हैं, तथापि वे पुद्गल चतुस्पर्शी जाति के माने गये हैं, इसी प्रकार चार (खुरदरा, भारी, शीत, रूक्ष) पाँच छः आदि स्पर्श वाले पुद्गल अष्टस्पर्शी जाति के माने गये हैं इसलिए यहाँ पुद्गलों के चौस्पर्शी और अष्टस्पर्शी-ये दो भेद ही किये हैं।

4 बुद्धि (औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी), 4 भेद मतिज्ञान के (अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा), 3 दृष्टि, 5 शक्ति (उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम), 4 संज्ञा। ये 61 भेद अरूपी के हैं। इनमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं पाये जाते। इनमें अगुरु-लघु का एक भाँगा पाया जाता है।

रूपी-अरूपी के थोकड़े सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्य

1. परमाणु से लेकर संख्यात-असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध तक सभी पुद्‍गल चतुस्पर्शी ही कहलाते हैं।
2. अनन्त प्रदेशी स्कन्ध चतुस्पर्शी तथा अष्टस्पर्शी दोनों ही प्रकार के होते हैं। जिनमें मात्र चार स्पर्श (शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष) होते हैं तथा जो जघन्य एक आकाश प्रदेश से लेकर असंख्यात आकाश प्रदेश पर भी ठहर सकते हैं, उन्हें चतुस्पर्शी स्कन्ध कहते हैं। जिनमें आठों स्पर्श होते हैं तथा वे असंख्यात आकाश प्रदेशों पर ही ठहरते हैं, उन पुद्‍गल स्कन्धों को अष्टस्पर्शी कहते हैं।
3. संसार में जो भी पुद्‍गल हमें दृष्टिगोचर होते हैं, वे अष्टस्पर्शी स्कन्ध ही होते हैं।
4. इस थोकड़े में किया गया रूपी-अरूपी के भेदों का विभाजन सामान्य अपेक्षा से ही समझना चाहिए। क्योंकि अनेक भेद ऐसे भी हैं जो अरूपी, चतुस्पर्शी तथा अष्टस्पर्शी इन तीनों में ही आ

सकते हैं। जैसे–राग–द्वेषादि अठारह पाप–ये चतुस्पर्शी में लिये हैं। गहराई से विचार करने पर ज्ञात होता है कि रागादि पाप जब तक आत्मिक स्तर पर रहते हैं, तो वे अरूपी होते हैं। जब वे ही पाप मानसिक स्तर पर आ जाते हैं तो चतुस्पर्शी तथा वाचिक और कायिक स्तर पर आ जाते हैं तो अष्टस्पर्शी हो जाते हैं। राग–द्वेष भाव कर्म होने से अरूपी माने गये हैं। अठारह पाप के रूप में चतुस्पर्शी तथा चेहरे आदि पर झलकने से अष्टस्पर्शी हो जाते हैं। इसी प्रकार मिथ्यात्व को मिथ्यादृष्टि के रूप में अरूपी माना है, जबकि मिथ्यादर्शन शल्य रूप पाप को चतुस्पर्शी माना है तथा मिथ्यात्व की प्रवृत्ति जब वाचिक और कायिक स्तर पर आ जाती है तो वह अष्टस्पर्शी हो जाता है।

5. अरूपी द्रव्यों तथा चतुस्पर्शी पुद्गलों में एक अगुरुलघु भंग पाया जाता है।

कठिन शब्दों के अर्थ

घनोदधि–जमा हुआ कठोर पानी (जमें हुए घी के समान) जो कभी पिघले नहीं।

घनवाय–जमी हुई कठोर वायु (पिघले हुए घी के समान)।

तनुवाय–पतली (हल्की) वायु (तपाये हुए घी के समान)।

सूक्ष्म पुद्गलास्तिकाय का स्कंध–दो प्रदेशी से लेकर अनन्त प्रदेशी तक के सभी चतुस्पर्शी स्कंध जो दृष्टिगोचर नहीं होते,

वैज्ञानिक साधनों से भी जिन्हें देखा नहीं जा सके, वे सब सूक्ष्म पुद्गलास्तिकाय के स्कंध कहलाते हैं।

बादर पुद्गलस्तिकाय का स्कंध–जो अनन्तानन्त परमाणुओं से मिलकर बना हुआ स्कंध हो, जो अष्टस्पर्शी हो, वे सब बादर पुद्गलास्तिकाय के स्कंध कहलाते हैं।

चार बुद्धि–1. औत्पातिकी–जो बुद्धि बिना देखे, सुने और सोचे ही पदार्थों को सहसा ग्रहण करके कार्य को सिद्ध कर दे।

(2) वैनयिकी बुद्धि–गुरु महाराज आदि की सेवा शुश्रूषा करने से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

(3) कार्मिकी बुद्धि–कर्म अर्थात् सतत अभ्यास और विचार से विस्तृत होने वाली बुद्धि। जैसे–सुनार, किसान आदि कर्म करते-करते अपने कार्य में उत्तरोत्तर दक्ष हो जाते हैं।

(4) पारिणामिकी बुद्धि–अति दीर्घकाल तक पूर्वापर पदार्थों के देखने आदि से उत्पन्न होने वाला आत्मा का धर्म, परिणाम कहलाता है। उस परिणाम के निमित्त से होने वाली बुद्धि। अर्थात् वयोवृद्ध व्यक्ति की बहुत काल तक संसार के अनुभव से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

अवग्रह–इन्द्रिय और पदार्थों के योग्य स्थान में रहने पर होने वाला सामान्य प्रतिभास (बोध)। जैसे घोर अंधेरी रात्रि में रस्सी आदि का स्पर्श होना।

ईहा–अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करते हुए विशेष की जिज्ञासा होना। जैसे–रस्सी आदि का ही स्पर्श होना चाहिए।

अवाय–ईहा से जाने हुए पदार्थों में निश्चयात्मक ज्ञान होना। जैसे–यह रस्सी का ही स्पर्श है।

धारणा–अवाय से जाना हुआ पदार्थों का ज्ञान इतना दृढ़ हो जाना कि कालान्तर में भी उस्का स्मरण रहे।

वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले जीव के परिणाम विशेष को उत्थानादि कहते हैं।

उत्थान–शारीरिक चेष्टा विशेष।

कर्म–गमनागमन आदि क्रिया।

बल–शारीरिक सामर्थ्य।

वीर्य–आत्मिक शक्ति (जीव–प्रभाव)

पुरुषाकार पराक्रम–बल और वीर्य की संयुक्त प्रवृत्ति।

★☆★☆★

श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा

श्री प्रज्ञापना सूत्र के सातवें पद के आधार से श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा इस प्रकार है–

नारकी के नेरिये, आभ्यंतर–ऊँचा श्वास, नीचा श्वास और बाह्य–ऊँचा श्वास, नीचा श्वास, लोहार की धमण की तरह निरन्तर लेते हैं।

भवनपति देवों में असुरकुमार देव जघन्य 7 स्तोक[2] में और उत्कृष्ट एक पक्ष से अधिक समय में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। शेष नव निकाय के देव और व्यंतर जाति के देव जघन्य 7 स्तोक और उत्कृष्ट पृथक्त्व मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

ज्योतिषी देव, जघन्य और उत्कृष्ट पृथक्त्व मुहूर्त्त में।

वैमानिक देवों में प्रथम देवलोक के देव जघन्य पृथक्त्व मुहूर्त्त और उत्कृष्ट दो पक्ष में।

दूसरे देवलोक के देव जघन्य पृथक्त्व मुहूर्त्त झाझेरा, उत्कृष्ट दो पक्ष झाझेरा में।

तीसरे देवलोक के देव जघन्य 2 पक्ष, उत्कृष्ट 7 पक्ष में।

चौथे देवलोक के देव जघन्य 2 पक्ष झाझेरा, उत्कृष्ट 7 पक्ष झाझेरा में।

---

2. असंख्यात समय की एक आवलिका, संख्यात आवलिका का एक श्वास, संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास, एक श्वासोच्छ्वास काल का एक प्राण, सात प्राण काल का एक स्तोक, सात स्तोक काल का एक लव, 77 लव का एक मुहूर्त्त, 30 मुहूर्त्त की एक अहोरात्रि तथा 15 अहोरात्रि का एक पक्ष होता है।

पाँचवें देवलोक के देव जघन्य 7 पक्ष, उत्कृष्ट 10 पक्ष में।
छठे देवलोक के देव जघन्य 10 पक्ष, उत्कृष्ट 14 पक्ष में।
सातवें देवलोक के देव जघन्य 14 पक्ष, उत्कृष्ट 17 पक्ष में।
आठवें देवलोक के देव जघन्य 17 पक्ष, उत्कृष्ट 18 पक्ष में।
नौवें देवलोक के देव जघन्य 18 पक्ष, उत्कृष्ट 19 पक्ष में।
दसवें देवलोक के देव जघन्य 19 पक्ष, उत्कृष्ट 20 पक्ष में।
ग्यारहवें देवलोक के देव जघन्य 20 पक्ष, उत्कृष्ट 21 पक्ष में।
बारहवें देवलोक के देव जघन्य 21 पक्ष, उत्कृष्ट 22 पक्ष में।
पहली ग्रैवेयक के देव जघन्य 22 पक्ष, उत्कृष्ट 23 पक्ष में।
दूसरी ग्रैवेयक के देव जघन्य 23 पक्ष, उत्कृष्ट 24 पक्ष में।
तीसरी ग्रैवेयक के देव जघन्य 24 पक्ष, उत्कृष्ट 25 पक्ष में।
चौथी ग्रैवेयक के देव जघन्य 25 पक्ष, उत्कृष्ट 26 पक्ष में।
पाँचवी ग्रैवेयक के देव जघन्य 26 पक्ष, उत्कृष्ट 27 पक्ष में।
छठी ग्रैवेयक के देव जघन्य 27 पक्ष, उत्कृष्ट 28 पक्ष में।
सातवीं ग्रैवेयक के देव जघन्य 28 पक्ष, उत्कृष्ट 29 पक्ष में।
आठवीं ग्रैवेयक के देव जघन्य 29 पक्ष, उत्कृष्ट 30 पक्ष में।
नौवीं ग्रैवेयक के देव जघन्य 30 पक्ष, उत्कृष्ट 31 पक्ष में।
चार अनुत्तर विमान के देव जघन्य 31 पक्ष, उत्कृष्ट 33 पक्ष में।
और सर्वार्थसिद्ध विमान के देव 33 पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य, विमात्रा-अनियत समय में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

श्वासोच्छ्वास के थोकड़े सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्य

1. इस थोकड़े में यह बतलाया गया है कि संसारी जीव एक बार श्वासोच्छ्वास लेने के बाद दुबारा श्वासोच्छ्वास कब लेते हैं, इन दोनों के बीच में कितना अन्तर होता है। दूसरे शब्दों में श्वास लेने में कितना-कितना विरह (अन्तर) पड़ता है, उसे इस थोकड़े से जाना जा सकता है।
2. देवों में जितने सागरोपम की स्थिति होती है, उनके उतने पक्ष जितना श्वासोच्छ्वास क्रिया का विरह काल होता है।
3. श्वासोच्छ्वास का विरह (अन्तर) बाह्य श्वासोच्छ्वास की अपेक्षा समझना चाहिए।
4. देवताओं में श्वास ग्रहण की प्रक्रिया अन्तर्मुहूर्त्त तक चलती है फिर अन्तर्मुहूर्त्त तक श्वास छोड़ते हैं। उदाहरण के रूप में एक सैकण्ड तक श्वास लेते रहना फिर एक सैकण्ड तक श्वास छोड़ते रहना। अर्थात् अन्तर्मुहूर्त्त तक श्वास लेने छोड़ने की प्रक्रिया चलती है।
5. श्वासोच्छ्वास के थोकड़े से स्पष्ट होता है कि सामान्यत: जो जीव जितने अधिक दु:खी होते हैं, उन जीवों की श्वासोच्छ्वास क्रिया उतनी ही अधिक और शीघ्र चलती है। अत्यन्त दु:खी जीवों के तो यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है।

6. जो जीव जितने अधिक सुखी होते हैं, उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तरोत्तर देरी से चलती है अर्थात् उनका श्वासोच्छ्वास और विरहकाल अधिक-अधिक होता है, क्योंकि श्वासोच्छ्वास क्रिया अपने आप में दु:ख रूप होती है। यह बात अपने अनुभव से भी सिद्ध है तथा शास्त्र भी इस बात का समर्थन करते हैं।
7. श्वासोच्छ्वास मात्र घ्राणेन्द्रिय (नासिका) से ही नहीं लिया जाता वरन् स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय (मुख) और घ्राणेन्द्रिय इन तीनों से लिया जाता है।
8. एकेन्द्रिय जीव स्पर्शनेन्द्रिय से ही श्वास लेते तथा छोड़ते हैं। बेइन्द्रिय जीव स्पर्शन तथा मुख से श्वास लेते-छोड़ते हैं। तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव तीनों इन्द्रियों से (स्पर्शन, मुख तथा घ्राण) श्वास लेते तथा छोड़ते हैं।
9. श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया हर गति, जाति आदि के जीवों में अलग-अलग प्रकार से होती है।

★☆★☆★

योनि का थोकड़ा

प्रज्ञापना सूत्र के नौवें पद के आधार से योनि (जीवों के उत्पत्ति स्थान) का थोकड़ा इस प्रकार है-

योनि तीन प्रकार की हैं-1. शीत-योनि, 2. उष्ण-योनि और 3. मिश्र-योनि।

पहली नरक से तीसरी नरक तक शीत-योनि के नैरयिक हैं। उन्हें उष्णता की वेदना होती है।

चौथी नरक के नेरियों में शीत-योनि वाले नैरयिक बहुत और उष्ण-योनि वाले थोड़े हैं। शीत-योनि वालों को उष्णता की वेदना और उष्ण-योनि वालों को शीत की वेदना होती है।

पाँचवीं नरक में शीत-योनि वाले नैरयिक थोड़े और उष्ण-योनि वाले अधिक हैं। शीत-योनि वालों को उष्ण वेदना और उष्ण-योनि वालों को शीत वेदना होती है।

छठी नरक के नैरिये उष्ण-योनि वाले हैं, उन्हें शीत की वेदना होती है और सातवीं नरक के नैरिये भी उष्ण-योनिक हैं, उन्हें शीत की महावेदना होती है।

सभी देवों के 13 दंडक, संज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और संज्ञी मनुष्य में एक मिश्र-शीतोष्ण योनि है।

तेउकाय की उष्ण-योनि और शेष चारों स्थावर, तीन

विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य में तीनों योनियाँ पाई जाती हैं।

अल्पबहुत्व-सब से थोड़े जीव मिश्र-योनिक, उनसे उष्णयोनिक असंख्यात गुण, उनसे अयोनिक (सिद्ध) अनंत गुण और उनसे शीत-योनिक अनंत गुण हैं।

दूसरे प्रकार से-योनि तीन प्रकार की हैं-1. सचित्त 2. अचित्त और 3. मिश्र। नारक और देव के चौदह दंडकों में एक अचित्त योनि ही होती है। पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य, इन सभी में तीनों प्रकार की योनियाँ होती हैं। संज्ञी तिर्यञ्च और संज्ञी मनुष्य में एक मिश्र-योनि पाई जाती है।

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े मिश्र-योनिक, उनसे अचित्त-योनिक असंख्यात गुण, उनसे अयोनिक (सिद्ध) अनन्त गुण और उनसे सचित्त-योनिक अनन्त गुण हैं।

तीसरे प्रकार से-योनि तीन प्रकार की हैं-1. संवृत्त (ढकी हुई) 2. विवृत्त (खुली-प्रकट) और 3. संवृत्त-विवृत्त (कुछ ढकी कुछ खुली)।

नारक व देव के 14 दंडक और 5 स्थावर, इन 19 दंडकों में एक संवृत्त योनि होती है। तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय तथा असंज्ञी मनुष्य में एक विवृत्त योनि होती है और संज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय तथा संज्ञी मनुष्य में संवृत्त-विवृत्त योनि होती है।

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े संवृत्त-विवृत्त योनिक, उनसे विवृत्त-योनिक असंख्यात गुण, उनसे अयोनिक अनन्तगुण और उनसे संवृत्त-योनिक अनन्तगुण।

चौथे प्रकार से-योनि तीन प्रकार की हैं-1. कूर्मोन्नता (कछुए की पीठ के समान उठी हुई) 2. शंखावर्त्ता (शंख के समान आवर्त्त वाली) और 3. वंशीपत्रा (बाँस के दो पत्तों की तरह संपुट मिले हुए)।

कूर्मोन्नता योनि 54 उत्तम पुरुषों की माताओं[3] के होती है। शंखावर्त्ता योनि, चक्रवर्ती की श्रीदेवी के होती है, जिसमें जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, किन्तु सन्तान के रूप में जन्म नहीं लेते[4]। वंशीपत्रा योनि सभी संसारी जीवों की माताओं के होती है, जिसमें जीव जन्म लेते भी हैं और नहीं भी लेते।

---

3. 63 श्लाघनीय पुरुषों में से 9 प्रतिवासुदेव को छोड़कर शेष 54 श्लाघनीय पुरुष समझना।
4. जैन तत्त्व प्रकाश (पू. श्री अमोलकऋषिजी द्वारा रचित) की द्वितीयावृत्ति सन् 1911 पृष्ठ 77 में लिखा है ''श्रीदेवी के सन्तान रूप में उत्पन्न नहीं होते, लेकिन मोती रूप में उत्पन्न होते हैं'' आगम से तो यह स्पष्ट नहीं होता है, लेकिन अगर मोती रूप में हो तो बाधा नहीं है।

★☆★☆★

विरह द्वार

श्री पन्नवणा सूत्र के छठे पद के आधार से 'विरह द्वार' का थोकड़ा इस प्रकार है–

प्रश्न–अहो भगवन्! चारों ही गति में उत्पन्न होने का विरह कितना है?

उत्तर–हे गौतम! चारों ही गति में उत्पन्न होने का विरह हो तो जघन्य 1 समय का, उत्कृष्ट 12 मुहूर्त्त का। पहली नारकी, भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, पहला–दूसरा देवलोक और सम्मूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति का विरह जघन्य 1 समय का, उत्कृष्ट 24 मुहूर्त्त का।

दूसरी नारकी से सातवीं नारकी तक का विरह हो तो जघन्य 1 समय का, उत्कृष्ट दूसरी नारकी का 7 दिन–रात का, तीसरी नारकी का 15 दिन–रात का, चौथी नारकी का 1 महीने का, पाँचवीं नारकी का दो महीनों का, छठी नारकी का 4 महीनों का और सातवीं नारकी का 6 महीनों का।

तीसरे देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध तक विरह हो तो जघन्य 1 समय का, उत्कृष्ट–तीसरे देवलोक का 9 रात–दिन और 20 मुहूर्त्त का। चौथे देवलोक का 12 रात–दिन और 10 मुहूर्त्त का। पाँचवें देवलोक का 22।। रात–दिन का। छठे देवलोक का 45 रात–दिन का। सातवें देवलोक का 80 रात–दिन का। आठवें

देवलोक का 100 रात-दिन का। नौवें तथा दसवें देवलोक का संख्यात महीनों का, ग्यारहवें-बारहवें देवलोक का संख्यात वर्षों का। नवग्रैवेयक की पहली त्रिक के देवों का संख्यात सैकड़ों वर्षों का। दूसरी त्रिक के देवों का संख्यात हजारों वर्षों का। तीसरी त्रिक के देवों का संख्यात लाखों वर्षों का। चार अनुत्तर विमान के देवों का पल के असंख्यातवें भाग (असंख्यात वर्षों) का। सर्वार्थसिद्ध के देवों का पल के संख्यातवें भाग का। सिद्ध भगवान व 64 इन्द्रों का विरह जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट 6 महीनों का।

चन्द्र, सूर्य के ग्रहण का विरह जघन्य 6 महीनों का, उत्कृष्ट चन्द्रमा का 42 महीनों का और सूर्य का 48 वर्षों का। ग्रहण की अपेक्षा विरह जघन्य 15 दिन का, उत्कृष्ट 42 माह (चन्द्रमास) का।

पाँच स्थावर में अनुसमय अविरह, तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यञ्च में विरह हो तो जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त का। सन्नी तिर्यञ्च और सन्नी मनुष्य में विरह हो तो जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट 12 मुहूर्त्त का।

नवीन सम्यग्दृष्टि का विरह हो तो जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट 7 दिन का। नवीन श्रावक का विरह हो तो जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट 12 दिन का और नवीन साधु का विरह हो तो जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट 15 दिन का।

भरत, ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा तीर्थङ्कर तथा 3 चारित्र (परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात) का जघन्य विरह 84,000 वर्ष का, चक्रवर्ती का जघन्य विरह देशोन 2,52,000 वर्ष, बलदेव और वासुदेव का जघन्य विरह 2,52,000 वर्षों का, साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका, पाँच महाव्रत तथा दो चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थापनीय) का जघन्य विरह 63,000 वर्षों का। बलदेव व वासुदेव का उत्कृष्ट विरह देशोन 20 कोडाकोडी सागरोपम का तथा शेष सभी का उत्कृष्ट विरह देशोन 18 कोडाकोडी सागरोपम का होता है।

विरह द्वार के थोकड़े से सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्य

1. जितने समय तक उस-उस गति-जाति आदि में एक भी जीव उत्पन्न नहीं हो, उस काल को **'विरह'** कहते हैं। अथवा जितने समय तक अभाव रूप अवस्था होती है, उसे विरह कहते हैं।
2. चारों गतियों का उत्कृष्ट विरह बारह मुहूर्त्त बतलाया है, जिसका तात्पर्य है कि बारह मुहूर्त्त के बाद तो कोई न कोई जीव एक गति से दूसरी गति में उत्पन्न होता ही है।
3. संग्रहणी वृत्ति के आधार से तथा क्षेत्रलोक प्रकाश (उत्तरार्ध) सर्ग 27 श्लोक संख्या 439 से 442 तथा 478 के आधार से नवमें देवलोक से लेकर नव ग्रैवेयक तक का विरह इस प्रकार समझना चाहिए-

देवलोक	उत्कृष्ट विरह
नवाँ देवलोक	संख्यात मास अर्थात् एक वर्ष के अन्दर
दसवाँ देवलोक	संख्यात मास अर्थात् एक वर्ष से कुछ अधिक
ग्यारहवाँ देवलोक	संख्यात वर्ष अर्थात् 100 वर्ष के अन्दर
बारहवाँ देवलोक	संख्यात वर्ष अर्थात् 100 वर्ष से कुछ अधिक
नव ग्रैवेयक की प्रथम त्रिक	संख्यात सौ वर्ष अर्थात् 1,000 वर्ष के अन्दर
नव ग्रैवेयक मध्यम त्रिक	संख्यात हजार वर्ष अर्थात् 1 लाख वर्ष के अन्दर
नव ग्रैवेयक अन्तिम त्रिक	संख्यात लाख वर्ष अर्थात् 1 करोड़ वर्ष के अन्दर

चार अनुत्तर विमान के देवों का विरह–भगवती शतक 5 उद्देशक 8 में विरह से दुगुना अवस्थान काल बताया गया है। जैसे पहली नारकी का 24 मुहूर्त्त का विरह तथा अवस्थान काल 48 मुहूर्त्त का बताया है। इसी प्रकार तीसरे देवलोक का अवस्थान काल 18 रात–दिन तथा 40 मुहूर्त्त का बताया, आगे भी दुगुना अवस्थान काल बताया है।

चार अनुत्तर विमान का अवस्थान काल असंख्यात हजारों वर्षों का है। इससे उनका विरह काल हजार असंख्यात काल सिद्ध हो जाता है। यह असंख्यात का भेद दूसरा असंख्यात अर्थात् मध्यम परीत्त असंख्यात समझना चाहिए। वह ग्रैवेयक के ऊपरी त्रिक से संख्यात गुणा ही होगा।

सर्वार्थसिद्ध विमान का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का संख्यातवाँ भाग है। वह चार अनुत्तर विमान के अन्तर से असंख्यात गुणा बड़ा है, क्योंकि सर्वार्थसिद्ध में चार अनुत्तर विमान से असंख्यात गुणे कम देवता होते हैं।

3. सिद्ध गति का उत्कृष्ट विरह छह मास का बतलाया है। अर्थात् छह मास के बाद अवश्य ही कोई न कोई कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य सिद्ध होता ही है।
4. तीन विकलेन्द्रिय और पाँच असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में उत्कृष्ट विरह अन्तर्मुहूर्त्त का होता है। साथ ही इन जीवों के अपर्याप्त व पर्याप्त दोनों ही भेद शाश्वत भी होते हैं। इसका कारण यह है कि यद्यपि अपर्याप्त अवस्था का काल भी अन्तर्मुहूर्त्त है तथा विरह का काल भी अन्तर्मुहूर्त्त है तथापि अपर्याप्त अवस्था का अन्तर्मुहूर्त्त बड़ा होता है तथा विरह का अन्तर्मुहूर्त्त छोटा होता है। इसलिए विरह काल में भी तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय अपर्याप्त अवस्था में भी शाश्वत होते हैं। पर्याप्त अवस्था में लम्बी स्थिति होने से वे शाश्वत होते ही हैं।

5. सन्नी (गर्भज) तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में उत्कृष्ट विरह बारह मुहूर्त्त का होता है। उनकी अपर्याप्त अवस्था की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त ही होती है। अपर्याप्त अवस्था की स्थिति से विरहकाल की स्थिति अधिक होने के कारण सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय अपर्याप्त अवस्था में शाश्वत नहीं हो सकते।
6. चन्द्र, सूर्य के ग्रहण का जघन्य विरह 6 माह का होता है। इसका तात्त्पर्य यह है कि एक बार चन्द्रग्रहण होने के बाद अगला चन्द्रग्रहण कम से कम 6 माह बाद होता है, इससे पहले नहीं। इसी प्रकार सूर्यग्रहण का जघन्य विरह भी समझना चाहिए। सूर्य ग्रहण का उत्कृष्ट विरह 48 वर्ष का होता है। अर्थात् एक बार सूर्यग्रहण पड़ने के 48 वर्ष बाद तो दुबारा सूर्यग्रहण पड़ता ही है।
7. ग्रहण की अपेक्षा विरह जघन्य 15 दिन का, उत्कृष्ट 42 माह का बतलाया है। जघन्य विरह को इस प्रकार समझना चाहिए कि जैसे किसी माह में चन्द्रग्रहण पड़ा हो तो कम से कम 15 दिन बाद सूर्यग्रहण हो सकता है अथवा सूर्यग्रहण पड़ा हो तो उसके कम से कम 15 दिन बाद चन्द्रग्रहण हो सकता है। क्योंकि चन्द्रग्रहण हमेशा पूर्णिमा को होता है, जबकि सूर्यग्रहण हमेशा अमावस्या को ही होता है। चन्द्रग्रहण के 42 माह के उत्कृष्ट विरह की अपेक्षा यहाँ भी उत्कृष्ट 42 माह का विरह समझना चाहिए।

सूर्यग्रहण भी 4 वर्ष (48 माह) में अवश्य हो जाता है अर्थात् उसका विरह 4 वर्ष से अधिक नहीं हो सकता। किन्तु यह ग्रहण अलग-अलग राशि पर होता है। एक ही राशि पर ग्रहण का उत्कृष्ट विरह 48 वर्ष का होता है। चन्द्र और सूर्य ग्रहण के विरह का उल्लेख भगवती सूत्र शतक 12 उद्देशक 6 में किया गया है।

8. नवीन साधु का विरह-1, 3, 4, 5 गुणस्थान से 7वें गुणस्थान में आने की अपेक्षा समझना चाहिए।

   नवीन श्रावक का विरह-1, 3, 4, 6 गुणस्थान से पाँचवें गुणस्थान में आने की अपेक्षा समझना चाहिए।

   नवीन सम्यग्दृष्टि का विरह-पहले अथवा तीसरे गुणस्थान से चौथे आदि गुणस्थान में आने की अपेक्षा से समझना चाहिए।

   नवीन साधु, श्रावक और सम्यग्दृष्टि के विरह का वर्णन विशेषावश्यक भाष्य में मिलता है।

8. चक्रवर्ती का विरह-तीर्थङ्करों के अथवा तिरेसठ श्लाघनीय पुरुषों के आयु, अवगाहना, परस्पर के विरह (अन्तर) में कोई निश्चित अनुपात नहीं है। अवसर्पिणी काल होने से आयु, अवगाहना में कमी होना तो निश्चित है, परन्तु कमी का क्रम (अनुपात) निश्चित नहीं है। जैसे कि-

बीसवें तीर्थङ्कर की आयु	-	30,000 वर्ष
इक्कीसवें तीर्थङ्कर की आयु	-	10,000 वर्ष
बाईसवें तीर्थङ्कर की आयु	-	1,000 वर्ष

तेईसवें तीर्थङ्कर की आयु	-	100 वर्ष
चौबीसवें तीर्थङ्कर की आयु	-	72 वर्ष

इनमें बीसवें व इक्कीसवें तीर्थङ्कर के बीच में 6 लाख वर्ष का अन्तर रहा तथा इन दोनों की आयु में (30,000-10,000) = 20,000 वर्ष का अन्तर रहा। इक्कीसवें तथा बाईसवें तीर्थङ्कर के बीच में 5 लाख वर्ष का अन्तर रहा तथा इन दोनों की आयु में (10,000-1,000) = 9,000 वर्ष का अन्तर रहा।

बाईसवें तथा तेइसवें तीर्थङ्कर के बीच में 83,750 वर्ष का अन्तर रहा तथा इन दोनों की आयु में (1,000-100) = 900 वर्ष का अन्तर रहा। तेइसवें व चौबीसवें तीर्थङ्कर के बीच में 250 वर्ष का अन्तर रहा तथा इन दोनों की आयु में (100-72) 28 वर्ष का अन्तर रहा।

अत: निश्चित अनुपात निकालना सम्भव नहीं है। चूंकि अन्तिम चक्रवर्ती, बलदेव-वासुदेव के बाद में होगा, इसलिये देशोन 2,52,000 वर्ष का जघन्य विरह कहा जा सकता है। निश्चित रूप से गणना करना शक्य नहीं।

9. बलदेव व वासुदेव का जघन्य विरह 2,52,000 वर्षों का इस प्रकार समझना चाहिए-

वर्तमान अवसर्पिणी काल के अन्तिम बलदेव व वासुदेव, भगवान अरिष्टनेमि के समय में हुए हैं। उनसे भगवान महावीर स्वामी का अन्तर 84,000 वर्षों का, पाँचवाँ आरा 21,000 वर्षों का, छठा आरा 21,000 वर्षों का, उत्सर्पिणी काल का पहला और

दूसरा आरा भी 21,000-21,000 वर्षों के हैं। उनके 84,000 वर्ष बाद उत्सर्पिणी काल के प्रथम बलदेव व वासुदेव होते हैं। सब मिलाकर विरह 84,000 + 84,000 + 84,000 = 2,52,000 वर्षों का हुआ।

10. तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, साधु, श्रावक आदि का उत्कृष्ट विरह भरत-ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा देशोन 18 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का बतलाया, उसे इस प्रकार समझना चाहिए-

उत्सर्पिणी काल

↓

चौथा आरा-2 कोड़ाकोड़ी सागरोपम (लगभग 84 लाख पूर्व कम)
पाँचवाँ आरा-3 कोड़ाकोड़ी सागरोपम
छठा आरा-4 कोड़ाकोड़ी सागरोपम

9 कोड़ाकोड़ी सागरोपम (84 लाख पूर्व कम)

अवसर्पिणी काल

↓

सुषमा सुषम (पहला आरा)-4 कोड़ाकोड़ी सागरोपम
सुषम (दूसरा आरा)-3 कोड़ाकोड़ी सागरोपम
सुषमा दुषम (तीसरा आरा)-2 कोड़ाकोड़ी सागरोपम (लगभग एक लाख पूर्व कम)

= 9 कोड़ाकोड़ी सागरोपम (लगभग 1 लाख पूर्व कम)

इस प्रकार 18 कोड़ाकोड़ी सागरोपम में लगभग 85 लाख पूर्व कम होने से देशोन 18 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का उत्कृष्ट विरह होता है।

11. बलदेव व वासुदेव का उत्कृष्ट विरह देशोन 20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है, जिसे इस प्रकार समझा जा सकता है– हर उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी के प्रथम व अन्तिम वासुदेव आदि (बलदेव, चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर) अपने–अपने आरे के निश्चितकाल बीतने पर ही होते हैं, ऐसा मानने की परम्परा है। अवसर्पिणी काल के प्रथम वासुदेव भगवान श्रेयांसनाथ के समय में हुए। उससे पहले की उत्सर्पिणी के अन्तिम वासुदेव 14वें तीर्थङ्कर के समय हुए होंगे, ऐसा माना जाता है। भगवान श्रेयांसनाथ से भगवान ऋषभदेव तक का अन्तर देशोन एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम का, उनसे पूर्व हुए उत्सर्पिणी के अन्तिम तीर्थङ्कर का अन्तर 18 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का (उत्सर्पिणी काल का चौथा आरा 2 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का + पाँचवाँ आरा 3 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का + छठा आरा 4 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का + अवसर्पिणी काल का पहला आरा 4 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का + दूसरा आरा 3 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का + तीसरा आरा 2 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का) उनसे उत्सर्पिणी काल के चौदहवें तीर्थङ्कर का समय देशोन एक कोड़ाकोड़ी का (उत्सर्पिणी के अन्तिम वासुदेव का समय) कुल मिलाकर देशोन 1 + 2 + 3 + 4 + 4 + 3 + 2 + 1 (देशोन) = देशोन (कुछ कम) 20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का उत्कृष्ट विरह हुआ।

★☆★☆★

पाँच देव का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र के शतक 12 उद्देशक 9 के आधार से ''पाँच देव'' का थोकड़ा इस प्रकार है-

1. नाम द्वार, 2. अर्थ द्वार, 3. आगति द्वार, 4. गति द्वार, 5. स्थिति द्वार, 6. वैक्रिय द्वार, 7. संचिट्ठण-काल द्वार, 8. अवगाहना द्वार, 9. अन्तर द्वार और 10. अल्प-बहुत्व द्वार।

विवेचन

1. नाम द्वार-अहो भगवन्! देव कितने प्रकार के हैं?

हे गौतम! देव पाँच प्रकार के हैं। यथा-1. भव्य-द्रव्य देव, 2. नरदेव 3. धर्मदेव, 4. देवाधिदेव और 5. भावदेव।

2. अर्थ द्वार-अहो भगवन्! भव्य-द्रव्य देव किसे कहते हैं?

हे गौतम! जो जीव, अभी मनुष्यगति अथवा तिर्यञ्चगति में हैं और भविष्य में देवगति में उत्पन्न होने वाले हैं, उन्हें 'भव्य-द्रव्य देव' कहते हैं।

अहो भगवन्! नरदेव किसे कहते हैं?

हे गौतम! जो राजा, चारों दिशाओं के स्वामी हैं, चक्रवर्ती हैं। जिनके पास 84 लाख हाथी, 84 लाख घोड़े, 84 लाख रथ, 96 करोड़ पैदल और 64 हजार रानियाँ हैं। जो 9 निधि और 14 रत्नों

के स्वामी हैं, 6 खण्ड के भोक्ता हैं, 32 हजार मुकुट-बन्ध राजा जिनकी आज्ञा में रहते हैं, उन्हें 'नरदेव' कहते हैं।

अहो भगवन्! धर्मदेव किसे कहते हैं?

हे गौतम! जो अनगार 27 गुणों को धारण करते हैं, उन्हें 'धर्मदेव' कहते हैं।

अहो भगवन्! देवाधिदेव किसे कहते हैं?

हे गौतम! 34 अतिशय, 35 वाणी के गुणों से युक्त, उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थङ्कर भगवान को 'देवाधिदेव' कहते हैं।

अहो भगवन्! भावदेव किसे कहते हैं?

हे गौतम! जिन जीवों के देव गति नाम कर्म एवं देवायु का उदय हो, वे भावदेव कहलाते हैं। भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक-ये चार जाति के देव 'भावदेव' होते हैं।

3. आगति द्वार-भव्य-द्रव्य देव की आगति-284 की। 179 की लड़ी (101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य, 48 तिर्यञ्च, 15 कर्मभूमि के अपर्याप्त व पर्याप्त), 7 नारकी, सर्वार्थसिद्ध को छोड़कर 98 जाति के देव के पर्याप्त।

नरदेव की आगति-82 की। पहली नारकी, 10 भवनपति, 26 वाणव्यंतर, 10 ज्योतिषी, 12 देवलोक, 9 लोकांतिक, 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमान के पर्याप्त।

धर्मदेव की आगति–275 की। 171 की लड़ी (179 में से तेउकाय व वायुकाय के 8 कम करके), 99 जाति के देव और पहली 5 नारकी के पर्याप्त।

देवाधिदेव की आगति–38 की। 12 देवलोक, 9 लोकांतिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान और पहली तीन नारकी के पर्याप्त।

भावदेव की आगति–111 की। 101 सन्नी मनुष्य, 5 सन्नी तिर्यञ्च और 5 असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय। इन सभी के पर्याप्त।

4. गति द्वार–भव्य–द्रव्य देव की गति–198 की। 99 जाति के देवता के अपर्याप्त और पर्याप्त।

नरदेव की गति–14 की–7 नारकी के अपर्याप्त और पर्याप्त।[5]

धर्मदेव की गति–70 की या मोक्ष की। 12 देवलोक, 9 लोकांतिक, 9 ग्रैवेयक, 5 अनुत्तर विमान। इन 35 के अपर्याप्त और पर्याप्त।

देवाधिदेव की गति–मोक्ष की।

भावदेव की गति–46 की–15 कर्मभूमि, 5 सन्नी तिर्यञ्च,

---

5. यद्यपि कोई–कोई नरदेव (चक्रवर्ती) देवों में भी उत्पन्न होते हैं तथा मोक्ष में भी जाते हैं। किंतु वे नरदेवपना छोड़कर धर्म देवपना (साधुपना) अंगीकार करें तो ही जाते हैं। काम–भोगों का त्याग किये बिना नरदेव (चक्रवर्ती) अवस्था में ही काल कर जाय तो वे सातों में से किसी भी एक नरक में उत्पन्न होते हैं।

बादर-पृथ्वी, पानी और प्रत्येक वनस्पति। इन 23 के अपर्याप्त और पर्याप्त।

5. स्थिति द्वार-भव्य-द्रव्य देव की स्थिति-जघन्य अन्त-र्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट 3 पल्योपम की।

नरदेव की स्थिति-जघन्य 700 वर्ष, उत्कृष्ट 84 लाख पूर्व की।

धर्मदेव की स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट देशऊणी एक करोड़ पूर्व की।

देवाधिदेव की स्थिति-जघन्य 72 वर्ष, उत्कृष्ट 84 लाख पूर्व की।

भावदेव की स्थिति-जघन्य 10 हजार वर्ष, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की।

6. वैक्रिय द्वार-भव्य-द्रव्य और धर्मदेव के लब्धि हो तो वैक्रिय करे जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता, (असंख्याता करने की शक्ति भी हो सकती है, किन्तु असंख्याता करते नहीं।) नरदेव और भावदेव वैक्रिय करे, तो जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता। (असंख्याता करने की शक्ति है, किन्तु असंख्याता करते नहीं।) देवाधिदेव में वैक्रिय करने की शक्ति तो है, किन्तु करते नहीं।

7. संचिट्ठण काल द्वार-स्थिति की तरह कहना चाहिए, परन्तु विशेषता यह है कि धर्मदेव का संचिट्ठण काल जघन्य एक समय का है।

8. अवगाहना[6] द्वार-भव्य-द्रव्य देव की अवगाहना जघन्य अँगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 1 हजार योजन। नरदेव की अवगाहना जघन्य 7 धनुष, उत्कृष्ट 500 धनुष। धर्मदेव की अवगाहना जघन्य दो हाथ[7], उत्कृष्ट 500 धनुष। देवाधिदेव की अवगाहना जघन्य 7 हाथ, उत्कृष्ट 500 धनुष। भावदेव की अवगाहना जघन्य एक हाथ[8], उत्कृष्ट 7 हाथ।

9. अन्तर द्वार-भव्य-द्रव्य देव का अन्तर-जघन्य 10 हजार वर्ष और अन्तर्मुहूर्त्त अधिक, उत्कृष्ट अनन्त काल। नरदेव का अन्तर-जघन्य 1 सागरोपम झाझेरा, उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्‌गल परावर्तन। धर्मदेव का अन्तर-जघन्य पल्योपम पृथक्त्व, उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्‌गल परावर्तन। देवाधिदेव का अन्तर नहीं। भावदेव का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट अनन्त काल।

10. अल्पबहुत्व द्वार-सब से थोड़े नरदेव। उनसे देवाधिदेव संख्यात गुण। उनसे धर्मदेव संख्यात गुण। उनसे भव्य-द्रव्य देव असंख्यात गुण। उनसे भावदेव असंख्यात गुण हैं।

---

6. अवगाहना का विवेचन अन्य स्थान से ग्रहण किया है।
7. अवसर्पिणी काल में पाँचवाँ आरा उतरते तक दो हाथ की अवगाहना होती है। पाँचवें आरे के बाद में साधु का विरह पड़ जाता है। अत: दो हाथ बोलना उचित लगता है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के द्वितीय वक्षस्कार से भी पाँचवें आरे उतरते मनुष्य की अवगाहना दो हाथ की स्पष्ट होती है। जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग 1 पृष्ठ 685 (तृतीय संस्करण 1988) में भी ऐसा ही है।
8. भावदेव की अवगाहना उत्पत्ति की अपेक्षा जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग होती है।

अल्पबहुत्व संबंधी ज्ञातव्य-

नरदेव सबसे थोड़े हैं, इसका कारण यह है कि प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में प्रत्येक भरत और ऐरवत क्षेत्र में बारह-बारह ही उत्पन्न होते हैं। महाविदेह क्षेत्रों के विजयों में वासुदेवों के होने से सभी विजयों में वे एक साथ उत्पन्न होते हैं। अत: यहाँ भरत-ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा से कथन समझना चाहिए।

नरदेवों से देवाधिदेव संख्यात गुणा है, क्योंकि भरत-ऐरवत क्षेत्रों में चक्रवर्तियों से दुगुने अर्थात् 24-24 होते हैं और महाविदेह क्षेत्र के विजयों में वासुदेवों की मौजूदगी में भी वे उत्पन्न होते हैं।

देवाधिदेवों से धर्मदेव संख्यात गुणा है, क्योंकि धर्मदेव एक ही समय में जघन्य दो हजार करोड़, उत्कृष्ट नौ हजार करोड़ महाविदेहादि क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

धर्मदेवों से भव्य द्रव्य देव असंख्यात गुणा है, क्योंकि देव गति में जाने वाले देशविरत, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय असंख्यात होते हैं।

भव्य द्रव्य देवों से भाव देव असंख्यात गुणा है। इसका कारण यह है कि भाव देव स्वाभाविक रूप से ही असंख्यात गुणा अधिक हैं।

★☆★☆★

ज्ञातव्य

(1) स्थिति द्वार संबंधी

☞ अन्तर्मुहूर्त्त की आयुष्य वाला पर्याप्त तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, देवताओं में उत्पन्न हो सकता है, इसलिए भव्य द्रव्य देव की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की बतलायी है। तीन पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति देवकुरु-उत्तरकुरु के युगलिक तथा स्थलचर युगलिक तिर्यञ्च की अपेक्षा से समझनी चाहिए।

☞ कोई संख्यात वर्ष की आयु वाला कर्मभूमिज सन्नी पर्याप्तक मनुष्य अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य बाकी रहे तब संयम अंगीकार करें, इसकी अपेक्षा से धर्म देव की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कही है। कोई संख्यात वर्ष की आयु वाला कर्मभूमिज सन्नी पर्याप्तक मनुष्य देशोन करोड़ पूर्व वर्ष तक चारित्र (संयम) का पालन करें, इस अपेक्षा से उत्कृष्ट स्थिति देशोन (कुछ कम) करोड़ पूर्व वर्ष की बतलायी है। यह उत्कृष्ट स्थिति तभी संभव है जब एक करोड़ पूर्व वर्ष की स्थिति वाला मनुष्य 9 वर्ष की आयु में संयम अंगीकार कर लें।

☞ धर्मदेव की स्थिति साधुपने की अपेक्षा से बतलाई है, जबकि शेष चार देवों की स्थिति यावज्जीवन की बतलाई है।

(2) संचिट्ठणकाल द्वार संबंधी

☞ कोई धर्मदेव (साधु) जिसे साधुपना स्वीकार किये असंख्यात समयों का मध्यम अन्तर्मुहूर्त्त बीत जाये, उसके बाद परिणामों

की हीनता से उसमें अशुभ भाव उत्पन्न हो जाये और भावों से साधुपने को छोड़कर असंयम में चला जाये। असंयम में एक समय ही रहे और पुनः भावों की शुभता हो जाने से संयम में (साधुपने में) आ जाये। साधुपने में एक समय रहे और मरण को प्राप्त हो जाय। इस अपेक्षा से धर्मदेव का जघन्य संचिट्ठणकाल परिणामों की अपेक्षा एक समय का माना गया है।

(3) अन्तर द्वार संबंधी

☞ नरदेव अर्थात् चक्रवर्ती की पदवी पूरे संसार अवस्थान काल में दो बार से अधिक प्राप्त नहीं होती है। नरदेव के लिए यह नियम है कि वह यदि मरकर पहली नारकी तथा भवनपति आदि देवों में जाता है तो कम से कम एक सागरोपम की स्थिति पाता है। वहाँ से निकलकर अगले भव में चक्ररत्नादि की साधना कर चक्रवर्ती पद को प्राप्त करता है, इस अपेक्षा से नरदेव का जघन्य अन्तर एक सागरोपम झाझेरी (कुछ अधिक) माना है।

☞ 'नरदेव' भवी तथा शुक्लपक्षी ही बनते हैं। अतः उनका उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन काल से अधिक नहीं होता है क्योंकि वे देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन काल में तो अवश्य ही मोक्ष में चले जाते हैं।

☞ धर्मदेव का जघन्य अन्तर पल्योपम पृथक्त्व अर्थात् 2 से 9 पल्योपम का बतलाया है, क्योंकि धर्मदेव (साधु) आराधकपने में काल करे तो जघन्य पहले देवलोक में जाते हैं। यद्यपि पहले

देवलोक की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की होती है, किंतु धर्मदेव पृथक्त्व पल्योपम से कम आयु पाते ही नहीं हैं। वहाँ देवलोक की आयु पूर्ण कर मनुष्य भव में आकर 9 वर्ष की आयु में पुन: धर्मदेव बन सकते हैं। अत: जघन्य अन्तर पृथक्त्व पल्योपम होता है। देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन में वह धर्मदेव अवश्य ही मोक्ष में चला जाता है, इसलिए उत्कृष्ट अन्तर इतना ही हो पाता है।

☞ भावदेव का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का जो बतलाया, वह सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय पर्याप्तक की अपेक्षा से समझना। क्योंकि सन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में देवगति से आया हुआ अन्तर्मुहूर्त्त में ही पर्याप्त बनकर पुन: देवगति (भाव देव) में जाकर उत्पन्न हो सकता है।

☞ उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल का वनस्पति में चले जाने की अपेक्षा से है, क्योंकि सूक्ष्म-साधारण तथा प्रत्येक वनस्पति में चले जाने पर वहाँ अनन्त काल तक भी रह सकता है। उसके बाद वनस्पतिकाय से निकलकर मनुष्य अथवा तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय बनकर भावदेव बन सकता है, अत: उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल का हो जाता है।

☞ देवाधिदेव उसी भव में नियमा मोक्ष में चले जाते हैं, अत: उनका अन्तर होता ही नहीं है।

★☆★☆★

अठाणु बोल का बासठिया

(महादण्डक)

प्रज्ञापना सूत्र पद 3 में 98 बोल की अल्पबहुत्व का वर्णन है। वह बासठिया युक्त इस प्रकार है–

	बोल	जीव.	गुण.	योग.	उप.	ले.
1.	सबसे थोड़े गर्भज मनुष्य	2	14	15	12	6
2.	इनसे मनुष्यिनी संख्यात गुणी	2	14	13	12	6
3.	बादर तेउकाय पर्याप्त असंख्यात गुण	1	1	1	3	3
4.	पाँच अनुत्तर विमान के देव असंख्यात गुण	2	1	11	6	1
5.	ग्रैवेयक की ऊपर की त्रिक के देव संख्यात गुण	2	4[8]	11	9	1
6.	मध्यम त्रिक के देव संख्यात गुण	2	4	11	9	1
7.	नीचे की त्रिक के देव सं. गुण	2	4	11	9	1
8.	बारहवें देवलोक के देव सं. गुण	2	4	11	9	1
9.	ग्यारहवें देवलोक के देव सं. गुण	2	4	11	9	1
10.	दसवें देवलोक के देव सं. गुण	2	4	11	9	1
11.	नौवें देवलोक के देव सं. गुण	2	4	11	9	1
12.	सातवीं नरक के नेरइये असं. गुण	2	4	11	9	1
13.	छठी नरक के नेरइये असं. गुण	2	4	11	9	1

8. भगवती सूत्र शतक 13 उद्देशक 2 तथा शतक 24 उद्देशक 21 में तथा जीवाभिगम की चतुर्विधा नामक तृतीय प्रतिपत्ति के दूसरे वैमानिकोद्देशक में ग्रैवेयक तक तीनों दृष्टि बताई है। कर्म ग्रन्थ भाग 3 गाथा 11 में ग्रैवेयक में गुणस्थान पहले से चौथे तक बताया है अर्थात् मिश्रदृष्टि मानी है।

	बोल	जीव.	गुण.	योग.	उप.	ले.
14.	आठवें देवलोक के देव असं. गुण	2	4	11	9	1
15.	सातवें देवलोक के देव असं. गुण	2	4	11	9	1
16.	पाँचवीं नरक के नेरइये असं. गुण	2	4	11	9	2
17.	छठे देवलोक के देव असं. गुण	2	4	11	9	1
18.	चौथी नरक के नेरइये असं. गुण	2	4	11	9	1
19.	पाँचवें देवलोक के देव असं. गुण	2	4	11	9	1
20.	तीसरी नरक के नेरइये असं. गुण	2	4	11	9	2
21.	चौथे देवलोक के देव असं. गुण	2	4	11	9	1
22.	तीसरे देवलोक के देव असं. गुण	2	4	11	9	1
23.	दूसरी नरक के नेरइये असं. गुण	2	4	11	9	1
24.	संमूर्च्छिम मनुष्य असं. गुण	1	1	3	4	3
25.	दूसरे देवलोक के देव असं. गुण	2	4	11	9	1
26.	दूसरे देवलोक की देवी सं. गुण	2	4	11	9	1
27.	पहले देवलोक के देव सं. गुण	2	4	11	9	1
28.	पहले देवलोक की देवी सं. गुण	2	4	11	9	1
29.	भवनपति देव असंख्यात गुण	3	4	11	9	4
30.	भवनपति देवी संख्यात गुण	2	4	11	9	4
31.	पहली नरक के नेरइये असं. गुण	3	4	11	9	1
32.	खेचर तिर्यञ्च पुरुष असं. गुण	2	5	13	9	6
33.	खेचर स्त्री संख्यात गुणी	2	5	13	9	6
34.	थलचर पुरुष संख्यात गुण	2	5	13	9	6
35.	थलचर स्त्री संख्यात गुणी	2	5	13	9	6
36.	जलचर पुरुष संख्यात गुण	2	5	13	9	6

	बोल	जीव.	गुण.	योग.	उप.	ले.
37.	जलचर स्त्री संख्यात गुणी	2	5	13	9	6
38.	व्यन्तर देव संख्यात गुण	3	4	11	9	4
39.	व्यन्तर देवी संख्यात गुणी	2	4	11	9	4
40.	ज्योतिषी देव संख्यात गुण	2	4	11	9	1
41.	ज्योतिषी देवी संख्यात गुणी	2	4	11	9	1
42.	खेचर नपुंसक (गर्भज) सं. गुण	2	5	13	9	6
43.	थलचर नपुंसक (गर्भज) सं. गुण	2	5	13	9	6
44.	जलचर नपुंसक (गर्भज) सं. गुण	2	5	13	9	6
45.	चौरेंद्रिय के पर्याप्त संख्यात गुण	1	1	2	4	3
46.	पंचेन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक	2	12	14	10	6
47.	बेइन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक	1	1	2	3	3
48.	तेइंद्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक	1	1	2	3	3
49.	पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त असं. गुण	2	3	5	9	6
50.	चौरेंद्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक	1	2	3	6	3
51.	तेइंद्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक	1	2	3	5	3
52.	बेइंद्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक	1	2	3	5	3
53.	प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त असंख्यात गुण	1	1	1	3	3
54.	बादर निगोद के पर्याप्त असं. गुण	1	1	1	3	3
55.	बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त असं. गुण	1	1	1	3	3
56.	बादर अप्काय के पर्याप्त असं. गुण	1	1	1	3	3
57.	बादर वायुकाय के पर्याप्त असं. गुण	1	1	4	3	3
58.	बादर तेउकाय के अपर्याप्त असं. गुण	1	1	3	3	3

	बोल	जीव.	गुण.	योग.	उप.	ले.
59.	प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुण	1	1	3	3	4
60.	बादर निगोद के अपर्याप्त असं. गुण	1	1	3	3	3
61.	बादर पृथ्वीकाय के अपर्या.असं. गुण	1	1	3	3	4
62.	बादर अप्काय के अपर्या. असं. गुण	1	1	3	3	4
63.	बादर वायुकाय के अपर्या. असं. गुण	1	1	3	3	3
64.	सूक्ष्म तेउकाय के अपर्या. असं. गुण	1	1	3	3	3
65.	सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्या. विशेषा.	1	1	3	3	3
66.	सूक्ष्म अप्काय के अपर्या. विशेषा.	1	1	3	3	3
67.	सूक्ष्म वायुकाय के अपर्या. विशेषा.	1	1	3	3	3
68.	सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्त सं. गुण	1	1	1	3	3
69.	सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पर्याप्त विशेषा.	1	1	1	3	3
70.	सूक्ष्म अप्काय के पर्याप्त विशेषा.	1	1	1	3	3
71.	सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषा.	1	1	1	3	3
72.	सूक्ष्म निगोद के अपर्या. असं. गुण	1	1	3	3	3
73.	सूक्ष्म निगोद के पर्याप्त सं. गुण[9]	1	1	1	3	3
74.	अभव्य जीव अनंत गुण	14	1	13	6	6
75.	प्रतिपतित समदृष्टि अनंत गुण	14	2[10]	13	6	6
76.	सिद्ध भगवंत अनंत गुण	0	0	0	2	0
77.	बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त अनंत गुण	1	1	1	3	3

9. बोल क्रं. 54, 60 और 72, 73 निगोद शरीर की अपेक्षा समझना।

10. प्रतिपतित समदृष्टि में पहला और तीसरा, इन दो गुणस्थानों की संभावना लगती है।

	बोल	जीव.	गुण.	योग.	उप.	ले.
78.	बादर के पर्याप्त विशेषाधिक	6	14	15	12	6
79.	बादर वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुण	1	1	3	3	4
80.	बादर के अपर्याप्त विशेषाधिक	6	3	5	9	6
81.	समुच्चय बादर विशेषाधिक	12	14	15	12	6
82.	सूक्ष्म वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुण	1	1	3	3	3
83.	सूक्ष्म के अपर्याप्त विशेषाधिक	1	1	3	3	3
84.	सूक्ष्म वनस्पतिकाय पर्याप्त संख्यात गुण	1	1	1	3	3
85.	सूक्ष्म के पर्याप्त विशेषाधिक	1	1	1	3	3
86.	समुच्चय सूक्ष्म विशेषाधिक	2	1	3	3	3
87.	भवसिद्धिया विशेषाधिक	14	14	15	12	6
88.	निगोदिया जीव विशेषाधिक	4	1	3	3	3
89.	वनस्पतिकाय के जीव विशेषाधिक	4	1	3	3	4
90.	एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक	4	1	5	3	4
91.	तिर्यञ्च जीव विशेषाधिक	14	5	13	9	6
92.	मिथ्यादृष्टि जीव विशेषाधिक	14	1	13	6	6
93.	अव्रती जीव विशेषाधिक	14	4	13	9	6
94.	सकषायी जीव विशेषाधिक	14	10	15	10	6
95.	छद्मस्थ जीव विशेषाधिक	14	12	15	10	6
96.	सयोगी जीव विशेषाधिक	14	13	15	12	6
97.	संसारी जीव विशेषाधिक	14	14	15	12	6
98.	समुच्चय जीव विशेषाधिक	14	14	15	12	6

98 बोल की अल्पबहुत्व सम्बन्धी उल्लेखनीय तथ्य

1. 98 बोलों की अल्पबहुत्व क्रमशः समझनी चाहिए। इनमें यह बतलाया गया है कि एक के बाद दूसरा बोल कितना गुणा अधिक है।
2. जिन बोलों की अल्पबहुत्व इस थोकड़े में बतलायी है, वह तभी सम्भव होगी, जबकि जिससे तुलना कर अल्पबहुत्व कही गई है, वे दोनों बोल अपनी उत्कृष्ट अवस्था में विद्यमान हों। जैसे-23वाँ बोल है-दूसरी नरक के नेरइये असंख्यात गुण तथा 24वाँ बोल है-सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यात गुण। इन दोनों बोलों में उक्त अल्पबहुत्व तभी सम्भव है जबकि 23वाँ तथा 24वाँ दोनों अपनी-अपनी उत्कृष्ट अवस्था में विद्यमान हों।
3. 98 बोलों में कुछ बोल अशाश्वत भी हैं, जैसे-24वाँ-विरह की अपेक्षा, 95वाँ-श्रेणी में विरह की अपेक्षा, 97वाँ-14वें गुणस्थान में विरह की अपेक्षा।

   24वाँ बोल सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यात गुणा है। जब 24 मुहूर्त्त का उत्कृष्ट विरह पड़ता है तब यह बोल मिलता ही नहीं है।

   95वाँ बोल छद्मस्थ जीव विशेषाधिक है। यह अल्पबहुत्व 94वें बोल की अपेक्षा तुलना करने पर घटित होती है। इन

दोनों बोलों की अल्पबहुत्व भी तभी सम्भव है, जब श्रेणी करने वाले जीव ग्यारहवें अथवा बारहवें गुणस्थान में हों। उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी दोनों ही शाश्वत नहीं हैं। इनमें भी उपशम श्रेणी में पृथक्त्व वर्ष का तथा क्षपक श्रेणी में 6 माह का उत्कृष्ट विरह पड़ सकता है। अत: विरह काल में 94वाँ से 95वाँ बोल विशेषाधिक न होकर समान ही होंगे।

97वाँ बोल-संसारी जीव विशेषाधिक है। यह अल्पबहुत्व 96वें बोल की अपेक्षा तुलना करने पर बनती है। यह तभी सम्भव है जबकि चौदहवें-अयोगी केवली गुणस्थान में जीव रहे। 14वाँ गुणस्थान शाश्वत नहीं है। सिद्धों के विरह के समान इसमें भी उत्कृष्ट 6 माह का विरह पड़ता है तब 14वाँ गुणस्थान भी नहीं मिलेगा। उस समय 14वें गुण-स्थान में अयोगी जीव नहीं होने से 96-97वें बोल की अल्पबहुत्व विशेषाधिक न होकर दोनों की एक समान ही होगी।

4. बोल क्रमांक 54, 60, 72 और 73 ये चारों निगोदिया जीवों के औदारिक शरीर की अपेक्षा से समझने चाहिए। क्योंकि उनके औदारिक शरीर असंख्यात ही होते हैं। ये चारों बोल **निगोद** कहलाते हैं।

5. बोल क्रमांक 82, 84, 88 सूक्ष्म व साधारण वनस्पतिकाय के जीवों अर्थात् निगोदिया जीवों की अपेक्षा से समझने चाहिए,

क्योंकि इन तीनों बोलों में **निगोदिया जीव** अनन्त-अनन्त होते हैं।

6. असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के पर्याप्त जीव मरकर पहली नारकी, भवनपति तथा वाणव्यन्तर देवों में जाकर उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसे जीव अपर्याप्त अवस्था में कुछ समय असन्नी रहते हैं, इस अपेक्षा से पहली नारकी, भवनपति, वाणव्यन्तर देवों में जीव के 3 भेद (असन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त, सन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त तथा सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त) होते हैं।

7. यद्यपि असन्नी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव मरकर भवनपति, वाणव्यन्तर में देवी भी बन सकता है, किन्तु नपुंसक अवस्था तक उसकी गणना देवी में नहीं करके देवों में ही की जाती है, वह भी मात्र अन्तर्मुहूर्त्त के लिए होती है। जिस प्रकार से इसी थोकड़े के पहले बोल सबसे थोड़े गर्भज मनुष्य में नपुंसक वेदी मनुष्य को भी सम्मिलित किया गया है, किन्तु मनुष्यिनी के बोल में नपुंसक वेदी मनुष्य की गणना नहीं की। उसी प्रकार देवी में भी नपुंसकवेदी असन्नी पंचेन्द्रिय की गणना नहीं की। अत: देवी में जीव के भेद-2 (सन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त व पर्याप्त) ही माने गये हैं।

★☆★☆★

चौदह गुणस्थानों का बासठिया

	गुणस्थानों के नाम	*जीव के भेद*	*गुणस्थान*	*योग*	*उपयोग*	*लेश्या*
1.	मिथ्यात्व गुणस्थान में	14	1	13	6	6
2.	सास्वादन गुणस्थान में	6	1	13	6	6
3.	मिश्र गुणस्थान में	1	1	10	6	6
4.	अविरत सम्यग्दृष्टि गुण. में	2	1	13	6	6
5.	देशविरत श्रावक गुण. में	1	1	12	6	6
6.	प्रमत्तसंयत गुणस्थान में	1	1	14	7	6
7.	अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में	1	1	9	7	3
8.	निवृत्तिबादर गुणस्थान में	1	1	9	7	1
9.	अनिवृत्तिबादर गुणस्थान में	1	1	9	7	1
10.	सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में	1	1	9	4	1
11.	उपशांतमोह गुणस्थान में	1	1	9	7	1
12.	क्षीणमोह गुणस्थान में	1	1	9	7	1
13.	सयोगी केवली गुणस्थान में	1	1	7	2	1
14.	अयोगी केवली गुणस्थान में	1	1	0	2	0

14 बोल के बासठिये से संबंधित ज्ञातव्य

1. बासठिया

जीव के भेद–14, गुणस्थान–14, योग–15, उपयोग–12, लेश्या–6, इस प्रकार ये कुल 61 बोल जिस पर घटित किये जाते हैं, एक वह बोल इनमें मिलाने पर कुल 62 बोल हो जाते हैं, इसी प्रकार से इसे बासठिया के नाम से जाना जाता है। अन्य थोकड़ों में भी बासठिया का अर्थ इसी प्रकार समझना चाहिए।

2. जीव के भेद

पहले गुणस्थान में सभी संसारी जीव मिलने से 14 ही भेद लिये हैं। दूसरा गुणस्थान बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय इनके अपर्याप्त में मिलने की अपेक्षा से तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त में मिलने की अपेक्षा से 6 भेद लिये हैं। तीसरा गुणस्थान तथा पाँचवें से लेकर चौदहवाँ गुणस्थान, ये सभी मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त में ही मिलते हैं। चौथा गुणस्थान संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त दानों में मिलने से जीव के ये दो भेद लिये हैं।

3. गुणस्थान

सभी गुणस्थानों में अपना–अपना ही गुणस्थान मिलता है, अत: सभी में अपना–अपना एक ही गुणस्थान लिया गया है।

4. योग

पहले व दूसरे गुणस्थान में आहारक व आहारक मिश्र काययोग को छोड़कर शेष 13 योग पाये जाते हैं। तीसरे गुणस्थान में 4 मन के, 4 वचन के तथा औदारिक व वैक्रिय काययोग ये 10 योग पाये जाते हैं, क्योंकि मिश्र गुणस्थान में किसी भी लब्धि का प्रयोग नहीं होता है।

चौथे गुणस्थान में आहारक व आहारक मिश्र को छोड़कर 13 योग होते हैं। पाँचवें गुणस्थान में कार्मण काययोग भी नहीं मिलता, अतः आहारक, आहारक मिश्र व कार्मण को छोड़कर 12 योग मिलते हैं। छठे गुणस्थान में आहारक लब्धि, वैक्रिय लब्धि आदि का प्रयोग हो सकता है अतः कार्मण काय योग को छोड़कर 14 योग हो सकते हैं।

सातवें से लेकर 12वें गुणस्थान तक अप्रमत्तता होने से किसी भी लब्धि का प्रयोग नहीं होता, अतः 4 मन के, 4 वचन के, 1 औदारिक का, इस प्रकार से 9 योग मिलते हैं। तेरहवें गुणस्थान में सत्य व व्यवहार मनोयोग, सत्य व व्यवहार भाषा, औदारिक काय योग, इस प्रकार 5 योग होते हैं। यदि कोई केवली केवली समुद्घात करें तो उसमें उस समय औदारिक मिश्र व कार्मण ये दो योग पाये जाते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर 7 योग 13वें गुरस्थान में मिल सकते हैं। 14वाँ गुणस्थान अयोगी होने से वहाँ किसी भी प्रकार का योग नहीं मिलता है।

5. उपयोग

पहले व तीसरे गुणस्थान में 3 अज्ञान व 3 दर्शन ये 6 उपयोग होते हैं। दूसरे, चौथे व पाँचवें गुणस्थान में 3 ज्ञान व 3 दर्शन ये 6 उपयोग होते हैं। छठे से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के साधु-साध्वियों में 4 ज्ञान व 3 दर्शन ये 7 उपयोग मिल सकते हैं। तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवन्तों में केवलज्ञान व केवलदर्शन ये दो उपयोग ही मिलते हैं। दसवें गुणस्थान का अन्तर्मुहूर्त्त छोटा होने से तथा वैसा ही जीव का स्वभाव होने से इस गुरस्थान में 4 ज्ञान की ही प्रवृत्ति मानी जाती है। 3 दर्शन की प्रवृत्ति नहीं मानी जाती। अत: इस गुणस्थान में क्षयोपशम की दृष्टि से 7 उपयोग तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से 4 उपयोग माने जाते हैं।

6. लेश्या

पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक के जीवों में कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल ये छहों लेश्याएँ मिलती हैं। सातवें गुणस्थान में तेजो, पद्म, शुक्ल ये तीन शुभ लेश्या मिलती हैं आठवें से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक के जीवों में एकमात्र शुक्ल लेश्या ही मिलती है। चौदहवाँ गुणस्थान अयोगी होने के कारण लेश्या रहित होता है, अलेशी माना जाता है।

★☆★☆★

32 बोल का बासठिया

1 समुच्चय जीव में

		जीव के भेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	समुच्चय जीव में	14	14	15	12	6
2.	समुच्चय अपर्याप्त में	7	3	5	9	6
3.	समुच्चय पर्याप्त में	7	14	15	12	6
4.	समुच्चय अपर्याप्त अनाहारक में	7	3	1	8	6
5.	समुच्चय अपर्याप्त आहारक में	7	3	4	9	6
6.	समुच्चय पर्याप्त अनाहारक में	1	2	1	2	1
7.	समुच्चय पर्याप्त आहारक में	7	13	14	12	6

2 नारकी में

		जीव के भेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	नारकी में	3	4	11	9	3
2.	नारकी अपर्याप्त में[12]	2	2	3	9	3
3.	नारकी पर्याप्त में	1	4	10	9	3
4.	नारकी अपर्याप्त अनाहारक में	2	2	1	8	3
5.	नारकी अपर्याप्त आहारक में	2	2	2	9	3
6.	नारकी पर्याप्त आहारक में	1	4	10	9	3

3 तिर्यञ्च में

		जीव के भेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	तिर्यञ्च में	14	5	13	9	6

12. कर्मग्रन्थ भाग 2 गाथा 14 के विवेचन में व गोम्मटमार कर्मकाण्ड 262 में नारकी के अपर्याप्त में सास्वादन समकित नहीं मानी है।

2.	तिर्यञ्च अपर्याप्त में	7	3	3	6	6
3.	तिर्यञ्च पर्याप्त में	7	5	12	9	6
4.	तिर्यञ्च अपर्याप्त अनाहारक में	7	3	1	5	6
5.	तिर्यञ्च अपर्याप्त आहारक में	7	3	2	6	6
6.	तिर्यञ्च पर्याप्त आहारक में	7	5	12	9	6

4 मनुष्य में

		जीव के भेद	*गुणस्थान*	*योग*	*उपयोग*	*लेश्या*
1.	मनुष्य में	3	14	15	12	6
2.	मनुष्य अपर्याप्त में	2	3	3	8	6
3.	मनुष्य पर्याप्त में	1	14	15	12	6
4.	मनुष्य अपर्याप्त अनाहारक में	2	3	1	7	6
5.	मनुष्य अपर्याप्त आहारक में	2	3	2	8	6
6.	मनुष्य पर्याप्त अनाहारक में	1	2	1	2	1
7.	मनुष्य पर्याप्त आहारक में	1	13	14	12	6

5 देव में

		जीव के भेद	*गुणस्थान*	*योग*	*उपयोग*	*लेश्या*
1.	देव में	3	4	11	9	6
2.	देव अपर्याप्त में	2	3	3	9	6
3.	देव पर्याप्त में	1	4	10	9	6
4.	देव अपर्याप्त अनाहारक में	2	3	1	8	6
5.	देव अपर्याप्त आहारक में	2	3	2	9	6
6.	देव पर्याप्त आहारक में	1	4	10	9	6

32 बोल का बासठिया सम्बन्धी ज्ञातव्य तथ्य

1. देवियों में जीव के भेद 2 ही होंगे और लेश्या 4 होंगी तथा शेष (गुणस्थान, योग, उपयोग) देवता के बोल के समान समझना।
2. तिर्यञ्चिणी में जीव के भेद दो होंगे। शेष बोल (गुणस्थान, योग, उपयोग, लेश्या) तिर्यञ्च के समान समझना।
3. अपर्याप्त व अनाहारक दोनों अवस्था जिसमें मिले, वह बाटा बहता जीव है।
4. मनुष्य और तिर्यञ्च में अपर्याप्त अवस्था में विभंग ज्ञान नहीं होता है।
5. तिर्यञ्च के अपर्याप्त में अवधि ज्ञान नहीं होता है।
6. कार्मण काय योग अपर्याप्त अवस्था में ही होता है। कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य में केवली समुद्घात के समय कार्मण काययोग होता है, इस अपेक्षा से सन्नी का पर्याप्त भेद भी लिया है।

★☆★☆★

102 बोल का बासठिया

श्री पन्नवणा सूत्र के तीसरे पद में 22 द्वारों का वर्णन है। वह बासठिया युक्त इस प्रकार हैं–

द्वार–1. जीव 2. गति 3. इन्द्रिय 4. काय 5. योग 6. वेद 7. कषाय 8. लेश्या 9. दृष्टि 10. सम्यक्त्व 11. ज्ञान 12. दर्शन 13. संयम 14. उपयोग 15. आहारक 16. भाषक 17. परीत 18. पर्याप्त 19. सूक्ष्म 20. संज्ञी 21. भव्य और 22. चरम।

जीव द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	समुच्चय जीव में	14	14	15	12	6
2.	नरक में	3	4	11	9	3
3.	तिर्यञ्च में	14	5	13	9	6
4.	मनुष्य में	3	14	15	12	6
5.	देव में	3	4	11	9	6
6.	सिद्ध में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व–सब से थोड़े मनुष्य, उनसे नारकी असंख्यात गुण, उनसे देव असंख्यात गुण, उनसे सिद्ध अनंत गुण, उनसे तिर्यञ्च अनन्त गुण और उनसे समुच्चय जीव विशेषाधिक हैं।

गति द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	नरक गति में	3	4	11	9	3
2.	तिर्यञ्च गति में	14	5	13	9	6
3.	तिर्यञ्चिनी में	2	5	13	9	6
4.	मनुष्य गति में	3	14	15	12	6
5.	मनुष्यिनी में	2	14	13	12	6
6.	देव गति में	3	4	11	9	6
7.	देवी में	2	4	11	9	4
8.	सिद्ध गति में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़ी मनुष्यिनी, उनसे मनुष्य असंख्यात गुण, उनसे नारकी असंख्यात गुण, उनसे तिर्यञ्चिनी असंख्यात गुण, उनसे देव असंख्यात गुण, उनसे देवी संख्यात गुण, उनसे सिद्ध अनन्त गुण और उनसे तिर्यञ्च अनन्त गुण हैं।

इन्द्रिय द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सइन्द्रिय में	14	12	15	10	6
2.	एकेन्द्रिय में	4	1	5	3	4
3.	बेइन्द्रिय में	2	2	4	5	3
4.	तेइन्द्रिय में	2	2	4	5	3

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
5. चौरेन्द्रिय में	2	2	4	6	3
6. पंचेन्द्रिय में	4	12	15	10	6
7. अनिन्द्रिय में	1	2	7	2	1[13]

अल्पबहुत्व–सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय, उनसे चौरेन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अनिन्द्रिय अनन्त गुण, उनसे एकेन्द्रिय अनन्त गुण और उनसे सइन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

काय द्वार

	जीव	**गुणस्थान**	**योग**	**उपयोग**	**लेश्या**
1. सकाय में	14	14	15	12	6
2. पृथ्वीकाय में	4	1	3	3	4
3. अप्काय में	4	1	3	3	4
4. तेउकाय में	4	1	3	3	3
5. वायुकाय में	4	1	5	3	3
6. वनस्पतिकाय में	4	1	3	3	4
7. त्रसकाय में	10	14	15	12	6
8. अकाय में	0	0	0	2	0

13. अनिन्द्रिय में 13वाँ, 14वाँ गुणस्थान होने से एक शुक्ललेश्या पाई जाती है।

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े त्रसकाय, उनसे तेउकाय असंख्यात गुण, उनसे पृथ्वीकाय विशेषाधिक, उनसे अप्काय विशेषाधिक, उनसे वायुकाय विशेषाधिक, उनसे अकाय अनन्त गुण, उनसे वनस्पतिकाय अनन्त गुण और उनसे सकाय विशेषाधिक हैं।

योग द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. सयोगी में	14	13	15	12	6
2. मन योगी में	1	13	14	12	6
3. वचन योगी में	5	13	14	12	6
4. काययोगी में	14	13	15	12	6
5. अयोगी में	1	1	0	2	0

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े मन-योगी, उनसे वचन-योगी असंख्यात गुण, उनसे अयोगी अनन्त गुण, उनसे काय-योगी अनन्त गुण और उनसे सयोगी विशेषाधिक हैं।

वेद द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. सवेदी में	14	9	15	10	6
2. पुरुषवेदी में	2	9	15	10	6
3. स्त्रीवेदी में	2	9	13	10	6

4.	नपुंसक वेदी में	14	9	15	10	6
5.	अवेदी में	1	6	11	9	1

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े पुरुषवेदी, उनसे स्त्रीवेदी संख्यात गुण, उनसे अवेदी अनन्त गुण, उनसे नपुंसकवेदी अनन्त गुण और उनसे सवेदी विशेषाधिक हैं।

कषाय द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सकषायी में	14	10	15	10	6
2.	क्रोध कषायी में	14	9	15	10	6
3.	मान कषायी में	14	9	15	10	6
4.	माया कषायी में	14	9	15	10	6
5.	लोभ कषायी में	14	10	15	10	6
6.	अकषायी में	1	4	11	9	1

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े अकषायी, उनसे मानी अनन्त गुण, उनसे क्रोधी विशेषाधिक, उनसे मायी विशेषाधिक, उनसे लोभी विशेषाधिक और उनसे सकषायी विशेषाधिक हैं।

लेश्या द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सलेश्यी में	14	13	15	12	6
2.	कृष्ण लेश्यी में	14	6	15	10	1

3.	नील लेश्यी में	14	6	15	10	1
4.	कापोत लेश्यी में	14	6	15	10	1
5.	तेजो लेश्यी में	3	7	15	10	1
6.	पद्‌म लेश्यी में	2	7	15	10	1
7.	शुक्ल लेश्यी में	2	13	15	12	1
8.	अलेश्यी में	1	1	0	2	0

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े शुक्ललेश्यी, उनसे पद्मलेश्यी संख्यात गुण, उनसे तेजोलेश्यी संख्यात गुण, उनसे अलेश्यी अनन्त गुण, उनसे कापोतलेश्यी अनन्त गुण, उनसे नीललेश्यी विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेश्यी विशेषाधिक और उनसे सलेश्यी विशेषाधिक हैं।

दृष्टि द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सम्यग्दृष्टि में	6	12	15	9	6
2.	मिथ्यादृष्टि में	14	1	13	6	6
3.	मिश्रदृष्टि में	1	1	10	6	6

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े मिश्रदृष्टि, उनसे सम्यग्दृष्टि अनन्त गुण और उनसे मिथ्यादृष्टि अनन्त गुण हैं।

सम्यक्त्व द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सास्वादन समकिती में	6	1	13	6	6

2.	क्षयोपशम समकिती में	2	4	15	7	6
3.	वेदक समकिती में	2	4	11[14]	7	6
4.	उपशम समकिती में	2	8	13[15]	7	6
5.	क्षायिक समकिती में	2	11	15	9	6

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े वेदक समकिती (क्षायिक वेदक), उनसे सास्वादन-समकिती असंख्यात गुणा, उनसे उपशम-समकिती संख्यात गुण, उनसे क्षयोपशम-समकिती असंख्य गुण, उनसे क्षायिक-समकिती अनन्त गुण और उनसे समुच्चय समकिती विशेषाधिक[16]।

ज्ञान द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	सज्ञानी में	6	12	15	9	6
2.	मति-श्रुतज्ञानी में	6	10	15	7	6
3.	अवधिज्ञानी में	2	10	15	7	6
4.	मन:पर्यायज्ञानी में	1	7	14	7	6

14. वेदक समकिती में 11 योग होते हैं-4 मन के, 4 वचन के, औदारिक, औदारिक मिश्र और वैक्रिय मिश्र।

15. कर्मग्रन्थ भाग 4 गाथा 26 में भी उपशम सम्यक्त्व में 13 योग (आहारक व आहारक मिश्र को छोड़कर कहे हैं।

16. उपशम समकिती से मिश्रदृष्टि असंख्यात गुणा होते हैं, उनसे क्षयोपशम समकिती असंख्यात गुण हैं। इसी प्रकार समुच्चय समकिती से मिथ्यादृष्टि अनन्त गुणा हैं। (समकित का द्वार होने से ये दो बोल नहीं दिये हैं, लेकिन जानकारी की दृष्टि से दिये जा रहे हैं।)

5.	केवलज्ञानी में	1	2	7	2	1
6.	मतिश्रुतअज्ञानी में	14	2	13	6	6
7.	विभंग ज्ञानी में	2	2	13	6	6

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े मन:पर्याय ज्ञानी, उनसे अवधिज्ञानी असंख्यात गुण, उनसे मतिश्रुत ज्ञानी परस्पर तुल्य और विशेषाधिक, उनसे विभंग ज्ञानी असंख्यात गुण, उनसे केवल ज्ञानी अनन्त गुण, उनसे सज्ञानी विशेषाधिक, उनसे मतिश्रुत अज्ञानी परस्पर तुल्य और अनन्त गुण[17]।

दर्शन द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	चक्षुदर्शनी में	6	12	14	10	6
2.	अचक्षुदर्शनी में	14	12	15	10	6
3.	अवधिदर्शनी में	2	12	15	10	6
4.	केवलदर्शनी में	1	2	7	2	1

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े अवधिदर्शनी, उनसे चक्षुदर्शनी असंख्यात गुण, उनसे केवलदर्शनी अनन्त गुण और उनसे अचक्षुदर्शनी अनन्त गुण हैं।

---

17. पुरानी पुस्तकों में मतिश्रुत अज्ञानी से समुच्चय अज्ञानी विशेषाधिक लिखा हुआ था लेकिन यह उचित नहीं है, क्योंकि विभंग ज्ञानी नियम से मतिश्रुत अज्ञानी होते ही हैं। मूल में भी यह बोल नहीं है।

संयम द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	समुच्चय संयत में	1	9	15	9	6
2.	सामायिक संयत में	1	4	14	7	6
3.	छेदोपस्थापनीय संयत में	1	4	14	7	6
4.	परिहारविशुद्धि संयत में	1	2	9	7	3
5.	सूक्ष्म-संपराय संयत में	1	1	9	7	1
6.	यथाख्यात संयत में	1	4	11	9	1
7.	संयतासंयत में	1	1	12	6	6
8.	असंयत में	14	4	13	9	6
9.	नोसंयत नोअसंयत- नो संयतासंयत में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े सूक्ष्म संपराय संयत, उनसे परिहार-विशुद्धि संयत संख्यात गुण, उनसे यथाख्यात संयत संख्यात गुण, उनसे छेदोपस्थापनीय संयत संख्यात गुण, उनसे सामायिक संयत संख्यात गुण, उनसे समुच्चय संयत विशेषाधिक, उनसे संयतासंयत असंख्य गुण, उनसे नो संयत नो असंयत नो संयतासंयत अनन्त गुण और उनसे असंयत अनन्त गुण हैं।

उपयोग द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	साकार उपयोगी में	14	14	15	12	6
2.	अनाकार उपयोगी में	14	13	15	12	6

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े अनाकार उपयोगी और उनसे साकार उपयोगी संख्यात गुण।

आहारक द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. आहारक में	14	13	14	12	6
2. अनाहारक में	8	5	1[18]	10	6

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े अनाहारक, उनसे आहारक असंख्यात गुण हैं।

भाषक द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. भाषक में	5	13	14	12	6
2. अभाषक में	10	5	5	11	6

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े भाषक, उनसे अभाषक अनन्त गुण हैं।

परीत द्वार

	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1. परीत में	14	14	15	12	6
2. अपरीत में	14	1[19]	13	6	6

18. चौदहवाँ गुणस्थान एकान्त अनाहारक है।
19. अपरीत में अभव्य जीव तथा कृष्ण पाक्षिक जीव आने से एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

3. नो परीत नो अपरीत में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व–सबसे थोड़े परीत, उनसे नो परीत नो अपरीत अनन्त गुण और उनसे अपरीत अनन्त गुण हैं।

पर्याप्त द्वार

	जीव	**गुणस्थान**	**योग**	**उपयोग**	**लेश्या**
1. पर्याप्त में	7	14	15	12	6
2. अपर्याप्त में	7	3	5	9	6
3. नो पर्याप्त नो अपर्याप्त में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व–सबसे थोड़े नो पर्याप्त नो अपर्याप्त, उनसे अपर्याप्त अनन्त गुण और उनसे पर्याप्त असंख्यात गुण हैं।

सूक्ष्म द्वार

	जीव	**गुणस्थान**	**योग**	**उपयोग**	**लेश्या**
1. सूक्ष्म में	2	1	3	3	3
2. बादर में	12	14	15	12	6
3. नो सूक्ष्म नो बादर में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व–सबसे थोड़े नो सूक्ष्म नो बादर, उनसे बादर अनन्त गुण और उनसे सूक्ष्म असंख्यात गुण हैं।

संज्ञी द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	संज्ञी में	2	12	15	10	6
2.	असंज्ञी में	12	2	6	6	4
3.	नो संज्ञी नो असंज्ञी में	1	2	7	2	1

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े संज्ञी, उनसे नो संज्ञी नो असंज्ञी अनन्त गुण और उनसे असंज्ञी अनन्त गुण हैं।

भव्य द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	भव्य में	14	14	15	12	6
2.	अभव्य में	14	1[20]	13	6	6
3.	नो भव्य नो अभव्य में	0	0	0	2	0

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े अभव्य, उनसे नो भव्य नो अभव्य अनन्त गुण और उनसे भव्य अनन्त गुण हैं।

चरम द्वार

		जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
1.	चरम में	14	14	15	12	6
2.	अचरम में	14	1[21]	13	8	6

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े अचरम, उनसे चरम अनन्त गुण हैं।

★☆★☆★

20-21. अभव्य और अचरम में एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

तेतीस बोल का थोकड़ा

उत्तराध्ययन सूत्र, समवायांग सूत्र तथा दशाश्रुतस्कंध आदि में तेतीस बोल का अधिकार चले सो कहते हैं–

(1) पहले बोले–एक प्रकार का असंयम–सभी प्रकार के आस्रव में प्रवृत्त होना।

(2) दूसरे बोले–दो प्रकार का बन्धन–राग बन्धन और द्वेष बन्धन।

(3) तीसरे बोले–तीन प्रकार का दण्ड–1 मन दण्ड, 2 वचन दण्ड और 3 काय दण्ड।

तीन प्रकार की गुप्ति–1 मन गुप्ति, 2 वचन गुप्ति और 3 काय गुप्ति।

तीन प्रकार का शल्य–1 माया शल्य, 2 निदान शल्य और मिथ्या–दर्शन शल्य।

तीन प्रकार का गर्व–1 ऋद्धि गर्व, 2 रस गर्व और 3 साता गर्व।

तीन प्रकार की विराधना–1 ज्ञान–विराधना, 2 दर्शन–विराधना और 3 चारित्र–विराधना।

(4) चौथे बोले–चार कषाय–1 क्रोध कषाय, 2 मान कषाय, 3 माया कषाय और 4 लोभ कषाय।

चार संज्ञा–1 आहार संज्ञा, 2 भय संज्ञा, 3 मैथुन संज्ञा और 4 परिग्रह संज्ञा।

चार कथा–1 स्त्री कथा, 2 भात (भोजन) कथा, 3 देश कथा और 4 राज्य कथा।

चार ध्यान–1 आर्त्तध्यान, 2 रौद्रध्यान, 3 धर्मध्यान और 4 शुक्लध्यान। तथा–1 पदस्थ, 2 पिण्डस्थ, 3 रूपस्थ और 4 रूपातीत ध्यान।

(5) पाँचवें बोले–पाँच क्रिया–1 कायिकी, 2 आधि–करणिकी, 3 प्राद्वेषिकी, 4 पारितापनिकी और 5 प्राणातिपातिकी।

पाँच काम गुण–शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श।

पाँच महाव्रत–1 सर्वथा प्राणातिपात से निवृत्ति, 2 सर्वथा मृषावाद से निवृत्ति, 3 सर्वथा अदत्तादान से निवृत्ति, 4 सर्वथा मैथुन से निवृत्ति और 5 सर्वथा परिग्रह से निवृत्ति।

पाँच समिति-1 ईर्या समिति, 2. भाषा समिति, 3 एषणा समिति, 4 आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति और 5 उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल परिस्थापनिका समिति, (इन कार्यों में शुद्ध उपयोग)।

पाँच प्रमाद-1 मद्य, 2 विषय, 3 कषाय, 4 निद्रा और 5 विकथा।

(6) छठे बोले-छह काय-1 पृथ्वीकाय, 2 अप्काय, 3 तेउकाय, 4 वायुकाय, 5 वनस्पतिकाय और 6 त्रसकाय।

छह लेश्या-1 कृष्ण लेश्या, 2 नील लेश्या, 3 कापोत लेश्या, 4 तेजो लेश्या, 5 पद्म लेश्या और 6 शुक्ल लेश्या।

(7) सातवें बोले-सात भय-

1 इहलोक भय-मनुष्य से मनुष्य को भय।

2 परलोक भय-मनुष्य को देव या तिर्यञ्च से भय।

3 आदान भय-धन-दौलत के नष्ट होने का भय।

4 अकस्मात् भय-अचानक आपत्ति या दुःख आने का भय।

5 आजीविका भय-भविष्य में आजीविका में बाधा उत्पन्न होने का भय[22]।

---

22. ठाणांग सूत्र में आजीविका के स्थान पर वेयणा भय (वेदना या पीड़ा का भय) है। समवायांग सूत्र में विवेचन उपर्युक्तानुसार है।

6 मरण भय-मृत्यु का डर।

7 अपयश भय-प्रतिष्ठा (इज्जत) में न्यूनता आने का भय।

(8) आठवें बोले-आठ मद-1 जाति मद, 2 कुल मद, 3 बल मद, 4 रूप मद, 5 तप मद, 6 श्रुत मद, 7 लाभ मद और 8 ऐश्वर्य मद।

(9) नौवें बोले-ब्रह्मचर्य की नव गुप्ति (नव-बाड़) ब्रह्मचर्य की 9 प्रकार से रक्षा।

1. ब्रह्मचारी पुरुष ऐसे स्थान में नहीं रहे जहाँ-स्त्री, पशु और नपुंसक रहते हों, या बार-बार आते-जाते हों। यदि रहे, तो चूहे और बिल्ली का दृष्टान्त।

2. ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री सम्बन्धी काम-राग बढ़ाने वाली कथा- वार्ता नहीं करे, यदि करे, तो नींबू और रसना (जीभ) का दृष्टान्त।

3. जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो, उस स्थान पर ब्रह्मचारी को एक मुहूर्त्त तक बैठना नहीं तथा स्त्री के साथ भी बैठना नहीं। यदि बैठे, तो कोरा (कद्दु) और कणक का दृष्टान्त।

4. ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के अंगोपांग, रूप-लावण्य राग दृष्टि से निरखे नहीं, बार-बार नजर भर के देखे नहीं। यदि देखे, तो कच्ची आँख और सूर्य का दृष्टान्त।

5. ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के रुदन, गीत, हास्य, आक्रंद, कुजित इत्यादि शब्द सुनाई पड़े, वैसे भींत या टाट्टी की आड़ में रहे नहीं (पास के मकान में से भी इनकी ध्वनि कानों में आती हो तो वहाँ नहीं रहे)। यदि रहे, तो मेघ और मयूर का दृष्टान्त।

6. ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के साथ पहले भोगे हुए भोगों को याद नहीं करे, यदि याद करे, तो जिनरक्षित और रयणादेवी का दृष्टान्त।

7. ब्रह्मचारी पुरुष, प्रतिदिन सरस-स्वादिष्ट आहार करे नहीं, यदि करे, तो सन्निपात के रोगी को दूध-मिश्री का दृष्टान्त।

8. ब्रह्मचारी पुरुष, लूखा एवं निरस आहार भी खूब ठूँस कर खावे नहीं, यदि अधिक खावे, तो सेर की हाँडी में सवा सेर का दृष्टान्त।

9. ब्रह्मचारी पुरुष को स्नान शृङ्गार करना नहीं, शरीर का मण्डन-विभूषा करना नहीं, यदि करे, तो रंक के हाथ में रत्न का दृष्टान्त।

(10) दसवें बोले-दस प्रकार का यति धर्म-

1. खंति-अपराधी पर वैरभाव नहीं रख कर क्षमा करना।

2. मुत्ति-लोभ रहित बनना।

3. अज्जवे-सरलता-निष्कपटता।

4. मद्दवे–मार्दव, नम्रता, अहंकार का त्याग।

5. लाघवे–द्रव्य से भण्डोपकरण रूप उपधि और भाव से कषाय रूप उपधि थोड़ी होना।

6. सच्चे–सच्चाई से, प्रामाणिकता से बोलना व आचरण करना।

7. संजमे–शरीर, मन और इन्द्रियों को वश में रखना, नियम में रखना।

8. तवे–आत्म–शक्ति बढ़े, इच्छा–निरोध की शक्ति बढ़े, मनोबल दृढ़ होवे, उस विधि से उपवास आदि तप करना।

9. चियाए–(अकिंचन) ममता का त्याग करना।

10. बंभचेरवासे–शुद्ध आचार पाले, मैथुन से सम्पूर्ण निवृत्ति करना।

दस प्रकार की समाचारी–

1. आवस्सिया–उपाश्रय से बाहर जाना हो तब बड़े मुनि से अर्ज करे कि मुझे उक्त कार्य के लिए बाहर जाना जरूरी है तथा बाहर जाते समय तीन बार आवस्सिया कहे।

2. निसीहिया–अपने कार्य से निवृत्त होकर उपाश्रय में पीछे लौटते समय तीन बार 'निस्सही' कहे अर्थात्–''मैं अपने काम से निवृत्त होकर आ गया हूँ।''

3. आपुच्छणा–खुद के काम होवे, तो गुरु से पूछे।

4. पडिपुच्छणा–अन्य मुनियों के काम होवे, तो गुरु से बार-बार पूछे।

5. छंदणा–अपनी लाई हुई वस्तु बड़ों को ग्रहण करने को कहे।

6. इच्छाकार–गुरु से प्रार्थना करे कि अगर आपकी इच्छा होवे, तो मुझे सूत्रार्थ-ज्ञान दान दीजिए।

7. मिच्छाकार–लगे हुए पापकर्मों का गुरु के सामने मिथ्या दुष्कृत कहे।

8. तहक्कार–गुरु के वचन को प्रमाण मानकर-स्वीकार करे अथवा 'आप जैसा कहते हैं वैसा ही है' ऐसा कहे।

9. अब्भुट्ठाणं–गुरु तथा बड़े मुनिवर आवे तब खड़ा होवे, सात-आठ कदम सामने जाकर सत्कार करे, वापिस जावे तब उतना ही पहुँचाने जावे।

10. उपसंपया–गुरुजनों से सूत्रार्थ-ज्ञान लक्ष्मी पाने के लिए सदैव सावधान रहे और गुरु के पास में रहे।

(11) ग्यारहवें बोले-श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ-1. दर्शन प्रतिमा–शुद्ध, अतिचार रहित समकित धर्म पाले। यह प्रतिमा एक मास की है।

2. व्रत प्रतिमा–अनेक प्रकार के व्रत–नियमों का अतिचार रहित पालन करे। यह प्रतिमा दो मास की है।

3. सामायिक प्रतिमा–सदैव अतिचार–रहित सामायिक करे। यह प्रतिमा तीन मास की है।

4. पौषध प्रतिमा–अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वों पर अतिचार रहित पौषध करे। यह प्रतिमा चार मास की है।

5. कायोत्सर्ग प्रतिमा–सदैव रात्रि में कायोत्सर्ग करे और पाँच बातों का पालन करे–1. स्नान नहीं करे 2. रात्रि भोजन त्यागे 3. धोती की लाँग खुली रखे 4. दिन को ब्रह्मचर्य पाले और 5. रात्रि को ब्रह्मचर्य का परिमाण करे। यह प्रतिमा जघन्य एक, दो या तीन दिन से लगाकर उत्कृष्ट पाँच मास की है।

6. ब्रह्मचर्य प्रतिमा–अतिचार रहित पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे। यह प्रतिमा जघन्य एक, दो या तीन दिन से लगाकर उत्कृष्ट छह मास की है।

7. सचित्त त्याग प्रतिमा–सचित्त वस्तु नहीं भोगे। यह प्रतिमा जघन्य एक, दो या तीन दिन की, उत्कृष्ट सात मास की है।

8. आरम्भ–त्याग प्रतिमा–स्वयं आरम्भ नहीं करे। यह प्रतिमा जघन्य एक, दो या तीन दिन, उत्कृष्ट आठ मास की है।

9. प्रेष्य त्याग प्रतिमा–दूसरे से भी आरम्भ नहीं करावे। यह प्रतिमा जघन्य एक, दो या तीन दिन, उत्कृष्ट नव मास की है।

10. उद्दिष्ट भक्त त्याग प्रतिमा–अपने वास्ते आरम्भ करके कोई वस्तु देवे, तो लेवे नहीं। खुर मुण्डन करावे या शिखा रखे। कोई उनसे संसार सम्बन्धी कोई बात एक–बार पूछे या बार–बार पूछे, तब जानता होवे, तो 'हाँ' कहे और नहीं जानता होवे तो 'ना' कहे। यह प्रतिमा जघन्य एक, दो या तीन दिन, उत्कृष्ट दस मास की है।

11. श्रमणभूत प्रतिमा–खुर मुण्डन करे या लोच करे। साधु जितना ही उपकरण, पात्र, रजोहरणादि रखे। स्वज्ञाति की गोचरी करे और कहे कि "मैं प्रतिमाधारी श्रावक हूँ।" साधु के समान उपदेश देवे। यह प्रतिमा जघन्य एक, दो या तीन दिन से लगाकर उत्कृष्ट ग्यारह मास की है।

सभी प्रतिमाओं में साढ़े पाँच वर्ष लगते हैं।

(12) बारहवें बोले–भिक्षु की बारह प्रतिमा–इन प्रतिमाओं की आराधना निम्नलिखित चौदह नियम से होती है–

1. शरीर पर ममता नहीं रखे, शरीर की शुश्रूषा नहीं करे। देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग समभाव से सहन करे।

2. एक दाति (दत्ति) आहार, एक दाति पानी, प्रासुक तथा

एषणिक लेवे। (दाति = धार = एक साथ, धार खण्डित हुए बिना जितना पात्र में पड़े, उतने को 'दाति' कहते हैं)।

3. प्रतिमाधारी साधु, गोचरी के लिए दिन के तीन विभाग करे और तीन विभागों में से चाहे जिस एक विभाग में गोचरी करे।

4. प्रतिमाधारी साधु, छह प्रकार से गोचरी करे-1. पेटी के आकारे 2. अर्ध पेटी के आकारे 3. बैल के मूत्र के आकारे 4. जिस प्रकार पतंगिया क्रमशः फूलों पर नहीं बैठता हुआ छूट कर फूलों से रस ग्रहण करता है इस प्रकार गोचरी करे 5. शंखावर्त्तन के आकार से गोचरी करे और 6. जाते हुए करे, तो आते हुए नहीं करे और आते हुए करे, तो जाते हुए नहीं करे।

5. गाँव के लोगों को मालूम हो जाय कि 'यह प्रतिमाधारी मुनि है', तो वहाँ एक रात ही रहे और ऐसा मालूम नहीं हो, तो दो रात्रि रहे। उपरान्त जितनी रात रहे उतना प्रायश्चित्त का भागी बने।

6. प्रतिमाधारी साधु, चार कारण से बोलते हैं-1. याचना करते, 2. मार्ग पूछते, 3. शय्या आदि की आज्ञा प्राप्त करते और 4. प्रश्न का उत्तर देते।

7. प्रतिमाधारी साधु, तीन स्थान में निवास करे-1. बाग-बगीचा, 2. श्मशान-छत्री, 3. वृक्ष के नीचे। इनकी याचना करे।

8. प्रतिमाधारी साधु, तीन प्रकार की शय्या ले सकते हैं–1. पत्थर की शिला 2. लकड़ी का पाट 3. पहले से बिछा हुआ संस्तारक।

9. प्रतिमाधारी साधु, जिस स्थान में है, वहाँ स्त्री आदि आवे, तो भय के मारे बाहर निकले नहीं। कोई जबरदस्ती हाथ पकड़ कर निकाले, तो ईर्यासमिति सहित बाहर हो जावे तथा वहाँ आग लगे तो भी भय से बाहर आवे नहीं, कोई बाहर निकाले, तो ईर्यासमिति पूर्वक बाहर निकल जावे।

10. प्रतिमाधारी साधु के पाँव में काँटा लग जाय या आँख में काँटा (धूल, तृण आदि) गिर जावे, तो साधु उसे अपने हाथों से निकाले नहीं।

11. प्रतिमाधारी साधु, सूर्योदय से सूर्य के अस्त होने तक विहार करे, बाद मे एक कदम भी नहीं चले।

12. प्रतिमाधारी साधु को सचित्त पृथ्वी पर बैठना या सोना कल्पता नहीं तथा सचित्त रज लगे हुए पैरों से गृहस्थ के यहाँ गोचरी पर जाना भी नहीं कल्पता।

13. प्रतिमाधारी साधु, प्रासुक जल से भी हाथ–पाँव और मुँह आदि धोवे नहीं, अशुचि का लेप दूर करने के लिए धोना कल्पता है।

14. प्रतिमाधारी साधु के मार्ग में हाथी, घोड़ा अथवा सिंह आदि जंगली जानवर सामने आये हों तो भी भय से रास्ता छोड़े नहीं, यदि वह जीव डरता हो, तो तुरन्त अलग हट जावे तथा रास्ते चलते धूप में से छाया में और छाया से धूप में आवे नहीं और शीत-उष्ण का उपसर्ग समभाव से सहन करे।

पहली प्रतिमा एक मास की है, जिसमें एक दाति अन्न और एक दाति पानी लेना कल्पता है।

दूसरी प्रतिमा एक मास की है, जिसमें दो दाति अन्न और दो दाति पानी लेना कल्पता है।

तीसरी प्रतिमा एक मास की है, जिसमें तीन दाति अन्न और तीन दाति पानी लेना कल्पता है। इसी प्रकार चौथी, पाँचवी, छठी और सातवीं प्रतिमा भी एक-एक मास की है। इनमें क्रमशः चार दाति, पाँच दाति, छह दाति और सात दाति आहार पानी लेना कल्पता है।

आठवीं प्रतिमा सात अहोरात्रि (दिन-रात) की है। चौविहार एकान्तर तप करे, ग्राम के बाहर रहे, इन तीन आसन में से एक आसन करे-चित्ता सोवे (उत्तानासन), करवट (एक बाजू पर) सोवे (पार्श्वासन), पालथी लगाकर सोवे (निषद्यासन)। परीषह से डरे नहीं।

नौवीं प्रतिमा भी सात अहोरात्रि (दिन-रात) की है। इतना विशेष कि इन तीन आसन में से एक आसन करे-दण्ड आसन, लकुट आसन या उत्कट आसन (दोनों पैर टिकाकर बैठना)।

दसवीं प्रतिमा भी सात अहोरात्रि (दिन-रात) की है। इतना विशेष कि इन तीन आसन में से एक आसन करे-गोदुह आसन, वीरासन और अम्बकुब्ज (आम्रकुब्ज) आसन।

गोदुहासन में पूरे शरीर को दोनों पाँवों के पंजों पर रखना होता है। इसमें जंघा, उरु आपस में मिले होते हैं। दोनों नितम्ब एड़ी पर टिके रहते हैं। वीरासन में पूरा शरीर दोनों पंजों के आधार पर तो रखना पड़ता है, किंतु इसमें नितम्ब एड़ी से कुछ ऊपर उठे हुए रखने पड़ते हैं तथा जंघा और उरु में भी कुछ दूरी रखनी पड़ती है। इस प्रकार कुर्सी पर बैठे व्यक्ति के नीचे से कुर्सी निकाल देने पर जो आकार-अवस्था उसकी होती है, वैसा ही लगभग इस आसन का आकार समझना चाहिए।

आम्रकुब्जासन में भी पूरा शरीर तो पैरों के पंजों पर रखना पड़ता है, घुटने कुछ टेढ़े रखने होते हैं, शेष शरीर का सम्पूर्ण भाग सीधा रखना पड़ता है। जिस प्रकार आम ऊपर से गोल और नीचे से कुछ टेढ़ा होता है, इसी प्रकार यह आसन किया जाता है।

ग्यारहवीं प्रतिमा एक दिन रात की है। चौविहार बेला करे, गाँव के बाहर पाँव संकोच कर और हाथ फैलाकर कायोत्सर्ग करे।

बारहवीं प्रतिमा एक रात की है। चौविहार तेला करे। गाँव के बाहर शरीर वोसिरावे, नेत्र खुले रखे, पाँव संकोचे, हाथ पसारे और अमुक वस्तु पर दृष्टि लगाकर ध्यान करे। देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग सहे। इस प्रतिमा के आराधन से अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान, इन तीन में से एक ज्ञान होता है। चलायमान हो जाय तो पागल बन जाय, दीर्घकाल का रोग हो जाय और केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाय।

इन कुल बारह प्रतिमाओं का काल 7 मास 28 दिन का है।

(13) तेरहवें बोले-क्रिया स्थान तेरह-1. अर्थ दण्ड-स्वयं के लिए या परिवारादि के लिए हिंसादि करे।

2. अनर्थ दण्ड-निरर्थक या कुत्सित अर्थ के लिए हिंसादि करे।

3. हिंसा दण्ड-'इसने मुझे मारा था, मारता है या मारेगा'-इस भाव से अर्थात् संकल्प पूर्वक उस प्राणी को मारना।

4. अकस्मात् दण्ड-मारना किसी ओर को था, किन्तु मर जाय कोई दूसरा ही अर्थात् बिना उपयोग सहसा किसी जीव की घात हो जाना।

5. दृष्टि विपर्यास दण्ड–शत्रु जानकर मित्र को मार डालना।

6. मृषावाद दण्ड–असत्य भाषण करना।

7. अदत्तादान दण्ड–चोरी करना।

8. अध्यात्म दण्ड–मन में दुष्ट विचार करना।

9. मान दण्ड–गर्व करना।

10. मित्र दण्ड–माता–पिता और मित्र वर्ग को अल्प अपराध पर भी भारी दण्ड देना।

11. माया दण्ड–कपट करना।

12. लोभ दण्ड–लोभ करना।

13. ईर्यापथिक दण्ड–सयोगी वीतरागी को लगने वाली क्रिया।

(14) चौदहवें बोले–जीव के चौदह भेद–

1. सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त। 2. सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त।

3. बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त। 4. बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त।

5. बेइन्द्रिय अपर्याप्त। 6. बेइन्द्रिय पर्याप्त।

7. तेइन्द्रिय अपर्याप्त। 8. तेइन्द्रिय पर्याप्त।

9. चौरेन्द्रिय अपर्याप्त। 10. चौरेन्द्रिय पर्याप्त।

11. असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त। 12. असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त।

13. संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त। 14. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त।

(15) पन्द्रहवें बोले-परमाधार्मिक देव पन्द्रह-1. अम्ब 2. अम्बरीष 3. श्याम 4. शबल 5. रौद्र 6. महारौद्र 7. काल 8. महाकाल 9. असिपत्र 10. धनुष 11. कुम्भ 12. बालुका 13. वैतरणी 14. खरस्वर और 15. महाघोष।

(16) सोलहवें बोले-सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन-1. स्वसमय-परसमय 2. वैतालीय 3. उपसर्ग परिज्ञा 4. स्त्री परिज्ञा 5. नरक विभक्ति 6. वीर स्तुति 7. कुशील परिभाषा 8. वीर्याध्ययन 9. धर्म-ध्यान 10. समाधि 11. मोक्षमार्ग 12. समवसरण 13. यथातथ्य 14. ग्रन्थ 15. आदानीय और 16. गाथा।

(17) सतरहवें बोले-संयम सतरह प्रकार का-1. पृथ्वीकाय संयम 2. अप्काय संयम 3. तेउकाय संयम 4. वायुकाय संयम 5. वनस्पतिकाय संयम 6. बेइन्द्रिय संयम 7. तेइन्द्रिय संयम 8. चउरिन्द्रिय संयम 9. पंचेन्द्रिय संयम 10. अजीवकाय संयम 11. प्रेक्षा संयम (मार्ग स्थंडिल भूमि आदि देखकर प्रवृत्ति करना) 12. उपेक्षा संयम (आज्ञानुसार शुभ क्रिया में प्रवृत्ति, अशुभ से निवृत्ति करना) 13. परिस्थापनिका संयम 14. प्रमार्जन संयम 15. मन:संयम, 16. वचन संयम और 17. काय संयम।

(18) अठारहवें बोले-ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार-1. मन, वचन और काया करके औदारिक शरीर सम्बन्धी भोग, भोगे नहीं, भोगावे नहीं और जो भोग करते हैं, उन्हें अनुमोदे (प्रशंसे) नहीं (3 × 3 = 9 हुए) वैसे ही नौ भेद वैक्रिय शरीर सम्बन्धी-त्रिकरण त्रियोग के हैं।

(19) उन्नीसवें बोले-ज्ञातासूत्र के उन्नीस अध्ययन- 1. मेघकुमार का 2. धन्नासार्थवाह और विजय चोर का 3. मोर के अण्डों का 4. कछुए का 5. शैलक राजर्षि का 6. तुंबे का 7. धन्नासार्थ-वाह और चार बहुओं का 8. मल्ली भगवती का 9. जिनपाल और जिनरक्षित का 10. चन्द्र की कला का 11. दावद्रव वृक्ष का 12. जितशुत्र राजा और सुबुद्धि प्रधान का 13. नन्द मणियार का 14. तेतलीपुत्र प्रधान और पोटिला का 15. नन्दी फल का 16. अमरकंका का 17. अश्व का 18. सुंसुमा बालिका का और 19. पुंडरीक कंडरीक का।

(20) बीसवें बोले-असमाधि के बीस स्थानक-1. उतावल से चले 2. बिना पूँजे चले 3. अयोग्य रीति से पूँजे 4. पाट-पाटला अधिक रखे 5. बड़ों के-गुरुजनों के सामने बोले 6. वृद्ध-स्थविर-गुरु का उपघात करे (मृत प्रायः करे) 7. साता-रस-विभूषा के निमित्त एकेन्द्रियादि जीवों की घात करे 8. पल-पल में क्रोध करे 9.

हमेशा क्रोध में जलता रहे 10. दूसरे के अवगुण बोले, चुगली-निंदा करे 11. निश्चयकारी भाषा बोले 12. नया क्लेश खड़ा करे 13. दबे हुए क्लेश को वापस जगावे 14. अकाल में स्वाध्याय करे 15. सचित्त पृथ्वी से भरे हुए हाथों से गोचरी करे 16. एक प्रहर रात्रि बीतने पर भी जोर-जोर से बोले 17. गच्छ में भेद उत्पन्न करे 18. क्लेश फैला कर गच्छ में परस्पर दुःख उपजावे 19. सूर्य उदय होने से अस्त होने तक खाया ही करे और 20. अनेषणीय अप्रासुक आहार लेवे।

(21) इक्कीसवें बोले-सबल (संयम को बिगाड़ने वाले) के इक्कीस दोष-

1. हस्तकर्म करे। 2. मैथुन सेवे।

3. रात्रि-भोजन करे। 4. आधाकर्मी आहारादि सेवन करे।

5. राजपिण्ड सेवन करे।

6. पाँच बोल सेवे-खरीद किया हुआ, उधार लिया हुआ, जबरन् छिना हुआ, स्वामी की आज्ञा बिना लिया हुआ और स्थान पर या सामने लाकर दिया हुआ आहार आदि ग्रहण करे (साधु को देने के लिए ही खरीदा हो। अन्यथा स्वाभाविक तो सभी खरीदा जाता है)।

7. त्याग कर बार–बार तोड़े।

8. छह–छह महीने में गण–संप्रदाय–पलटे।

9. एक मास में तीन बार कच्चे जल का स्पर्श करे–नदी उतरे।

10. एक मास में तीन बार माया (कपट) करे।

11. जिसके मकान में रहे हों, उसी के यहाँ का आहार करे (शय्यातर–पिण्ड भोगवे)।

12. जानबूझ कर हिंसा करे।

13. जानबूझ कर झूठ बोले।

14. जानबूझ कर चोरी करे।

15. जानबूझ कर सचित्त–पृथ्वी पर शयन–आसन करे।

16. जानबूझ कर सचित्त–मिश्र पृथ्वी पर शय्या आदि करे।

17. सचित्त शिला तथा जिसमें छोटे–छोटे जन्तु रहे, वैसे काष्ठ आदि वस्तु पर अपना शयन–आसन लगावे।

18. जानबूझ कर दस प्रकार की सचित्त वस्तु खावे–मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज।

19. एक वर्ष में दस बार सचित्त जल का स्पर्श करे–नदी उतरे।

20. एक वर्ष में दस बार माया (कपट) करे।

21. सचित्त जल से भीगे हुए हाथ से गृहस्थ, आहारादि देवे और उसे जानता हुआ ले कर भोगवे।

(22) बाईसवें बोले-परीषह बाईस प्रकार के-1. क्षुधा 2. तृषा 3. शीत 4. उष्ण 5. डाँस-मच्छर 6. अचेल (वस्त्र रहित या अल्प वस्त्र) 7. अरति 8. स्त्री 9. चर्या-चलने का 10. निषद्या-स्थिर आसन लगा कर उपद्रवजनक स्थान पर बैठे रहने का 11. शय्या-उपाश्रय का 12. आक्रोश 13. वध (प्राणनाश) 14. याचना 15. अलाभ (आवश्यक वस्तु का नहीं मिलना) 16. रोग 17. तृण स्पर्श 18. जल्ल (पसीना तथा मैल) 19. सत्कार-पुरस्कार 20. प्रज्ञा 21. अज्ञान और 22. दर्शन परीषह।

(23) तेईसवें बोले-सूत्रकृतांग के 23 अध्ययन-प्रथम श्रुतस्कन्ध के 16 अध्ययन तो सोलहवें बोल में हैं। दूसरे श्रुतस्कन्ध के सात अध्ययन-1. पुण्डरीक कमल 2. क्रियास्थान 3. आहारपरिज्ञा 4. प्रत्याख्यान परिज्ञा 5. अनगारसुत्त 6. आर्द्रकुमार और 7. उदकपेढाल पुत्र।

(24) चौबीसवें बोले-देव चौबीस प्रकार के-10 भवनपति, 8 व्यन्तर (पहले से आठवें तक), 5 ज्योतिषी और 1 वैमानिक-ये कुल 24 हुए।

(25) पच्चीसवें बोले-पाँच महाव्रत की पच्चीस भावना।

पहले महाव्रत की पाँच भावना-1. ईर्यासमिति भावना 2. मन-समिति भावना 3. वचनसमिति भावना 4. एषणासमिति भावना और 5. आदानभाण्ड-मात्र-निक्षेपणा समिति भावना।

दूसरे महाव्रत की पाँच भावना-1. बिना विचार किये बोलना नहीं 2. क्रोध से बोलना नहीं 3. लोभ से बोलना नहीं 4. भय से बोलना नहीं और 5. हास्य से बोलना नहीं।

तीसरे महाव्रत की पाँच भावना-1. निर्दोष स्थानक याच कर लेना 2. तृण आदि याच कर लेना 3. स्थानक आदि के क्षेत्र की सीमा-निर्धारण पूर्वक आज्ञा लेना 4. रत्नाधिक की आज्ञा से तथा आहार का संविभाग करके आहार करना 5. उपाश्रय मे रहे हुए संभोगी साधुओं से आज्ञा लेकर रहना तथा भोजनादि करना।

चौथे महाव्रत की पाँच भावना-1. स्त्री, पशु, नपुंसक सहित स्थानक में ठहरना नहीं 2. स्त्री सम्बन्धी कथा-वार्त्ता करना नहीं 3. स्त्री के अंगोपांग, राग दृष्टि से देखना नहीं 4. पहले के काम-भोग याद करना नहीं और 5. सरस तथा बल-वर्धक आहार करना नहीं।

पाँचवें महाव्रत की पाँच भावना-1. अच्छे शब्द पर राग

और बुरे शब्द पर द्वेष करना नहीं, वैसे ही 2. रूप पर 3. गंध पर 4. रस पर और 5. स्पर्श पर रागद्वेष नहीं करना।

(26) छब्बीसवें बोले-छब्बीस उद्देशक-दशाश्रुत-स्कन्ध के 10, बृहत्कल्प के 6 और व्यवहार सूत्र के 10 (इनमें साधु का विधिवाद है)।

(27) सत्तावीसवें बोले-साधु के सत्ताईस गुण-पाँच महाव्रतों का पालन, पाँच इन्द्रियों का निग्रह करना, चार कषाय का विजय करना (5 + 5 + 4 = 14) 15 भाव सत्य, 16 करण सत्य, 17 योग सत्य, 18 क्षमा, 19 वैराग्य, 20 मन:समाधारणता, 21 वचन-समाधारणता, 22 काय-समाधारणता, 23 ज्ञान सम्पन्नता, 24 दर्शन सम्पन्नता, 25 चारित्र सम्पन्नता, 26 वेदना सहिष्णुता और 27 मरण सहिष्णुता।

(28) अट्ठाईसवें बोले-आचार कल्प अट्ठाईस प्रकार का- 1. एक मास का प्रायश्चित्त 2. एक मास और पाँच दिन का 3. एक मास और दस दिन का। इसी प्रकार पाँच-पाँच दिन बढ़ाते हुए पाँच महीने तक कहना। इस प्रकार पच्चीस उद्घातिक आरोपणा है, 26. अनुद्घातिक आरोपणा 27. कृत्स्न (सम्पूर्ण) आरोपणा और 28. अकृत्स्न (अपूर्ण) आरोपणा।

(29) उनतीसवें बोले-पाप श्रुत 29-1. भौमश्रुत–भूमि के विकार, भूकम्प आदि का फल–वर्णन करने वाला निमित्त–शास्त्र। **2. उत्पातश्रुत**–अकस्मात् रक्त–वर्षा आदि उत्पातों का फल बताने वाला निमित्त शास्त्र। **3. स्वप्नश्रुत**–शुभ–अशुभ स्वप्नों का फल वर्णन करने वाला श्रुत। **4. अन्तरिक्षश्रुत**–आकाश में विचरने वाले ग्रहों के युद्धादि होने, ताराओं के टूटने और सूर्यादि के ग्रहण आदि का फल बताने वाला श्रुत है। **5. अंगश्रुत**–शरीर के विभिन्न अंगों के हीनाधिक होने और नेत्र, भुजा आदि के फड़कने का फल बताने वाला श्रुत। **6. स्वरश्रुत**–मनुष्यों, पशु–पक्षिओं एवं अकस्मात् काष्ठ–पाषाणादि–जनित स्वरों (शब्दों) को सुनकर उनके फल को बताने वाला श्रुत। **7. व्यंजनश्रुत**–शरीर में उत्पन्न हुए तिल, मषा आदि का फल बताने वाला श्रुत। **8. लक्षणश्रुत**–शरीर में उत्पन्न चक्र, खड्ग, शंखादि चिह्नों का फल बताने वाला श्रुत।

भौमश्रुत तीन प्रकार का है, जैसे–सूत्र वृत्ति और वार्त्तिक।

1. अंगश्रुत के सिवाय अन्य मतों की सहस्र पद–प्रमाण रचना को सूत्र कहते हैं।

2. उन्हीं सूत्रों की लक्ष–पद–प्रमाण व्याख्या को वृत्ति कहते हैं।

3. उस वृत्ति की कोटि–पद प्रमाण व्याख्या को वार्त्तिक कहते हैं।

इन सूत्र, वृत्ति और वार्त्तिक के भेद से उपर्युक्त भौम, उत्पाद आदि आठों प्रकार के श्रुत के (8 x 3 = 24) चौबीस भेद हो जाते हैं।

25. विकथानुयोगश्रुत–स्त्री, भोजन–पान आदि की कथा करने वाले तथा अर्थ–काम आदि की प्ररूपणा करने वाले पाकशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र आदि।

26. विद्यानुयोगश्रुत–रोहिणी, प्रज्ञप्ति, अंगुष्ठप्रसेनादि विद्याओं को साधने के उपाय और उनका उपयोग बताने वाला शास्त्र।

27. मंत्रानुयोगश्रुत–लौकिक प्रयोजनों के साधक अनेक प्रकार के मंत्रों का साधन बताने वाला मंत्र शास्त्र।

28. योगानुयोगश्रुत–स्त्री–पुरुषादि को वश में करने वाले अंजन, गुटिका आदि को बतलाने वाला शास्त्र।

29. अन्य तीर्थिक प्रवृत्तानुयोग–कपिल, बौद्ध आदि मतावलम्बियों के द्वारा रचित शास्त्र।

(30) तीसवें बोले–महामोहनीय कर्म–बन्ध के तीस स्थान–

1. त्रस जीव को जल में डूबा कर मारे।

2. त्रस जीव को श्वाँस रूँध कर मारे।

3. त्रस जीवों को मकान, बाड़े आदि में बन्द कर अग्नि या धुँए से घोट कर मारे।

4. तलवारादि शस्त्र से मस्तकादि अंगोपांग काटे।

5. मस्तक पर गीला चमड़ा बाँध कर मारे।

6. ठगाई, धोखाबाजी, धूर्तता से दण्ड, फलक आदि के द्वारा मार कर दूसरे का उपहास करे तथा विश्वासघात करे।

7. कपट करके अपना दुराचार छिपावे, सूत्रार्थ छिपावे।

8. आप कुकर्म करे और दूसरे निरपराधी मनुष्य पर आरोप लगावे तथा दूसरे की यश:कीर्ति घटाने के लिए झूठा कलंक लगावे।

9. सत्य को दबाने के लिए मिश्र वचन बोले, सत्य का अपलाप करे तथा क्लेश बढ़ावे।

10. राजा का मन्त्री होकर राजा की लक्ष्मी हरण करना चाहे, राजा की रानी से कुशील सेवन करना चाहे, राजा के प्रेमीजनों के मन को पलटना चाहे तथा राजा को राज्याधिकार से हटाना चाहे।

11. विषय-लम्पट होकर भी अपने को कुँवारा बतावे।

12. ब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी अपने को ब्रह्मचारी बतावे।

13. जो नौकर, स्वामी की लक्ष्मी लूटे तथा लुटावे।

14. जिस पुरुष ने अपने को धनवान् इज्जतवान् अधिकारी बनाया, उस उपकारी से ईर्ष्या करे, बुराई करे, हल्का बताने की चेष्टा करे, उपकार का बदला अपकार से देवे।

15. भरणपोषण करने वाले राजादि के धन में लुब्ध हो कर राजा का तथा ज्ञानदाता गुरु का हनन करे।

16. राजा, नगर-सेठ तथा मुखिया (बहुत यश वाले), इन तीनों में से किसी का हनन करे।

17. बहुत-से मनुष्यों का आधारभूत जो मनुष्य है, उसका हनन करे।

18. जो संयम लेने को तैयार हुआ है, उसकी संयम से रुचि हटावे तथा संयम लिये हुए को धर्म से भ्रष्ट करे।

19. तीर्थङ्कर के अवर्णवाद बोले।

20. तीर्थङ्कर प्ररूपित न्याय मार्ग का द्वेषी बन कर उस मार्ग की निन्दा करे तथा उस मार्ग से लोगों का मन दूर हटावें।

21. आचार्य, उपाध्याय तथा सूत्र विनय के सिखाने वाले पुरुषों की निन्दा करे, उपहास करे।

22. आचार्य, उपाध्याय के मन को आराधे नहीं तथा अहंकार भाव के कारण भक्ति नहीं करे।

23. अल्प शास्त्रज्ञान वाला होते हुए भी खुद को बहुश्रुत बतावे, अपनी झूठी प्रशंसा करे।

24. तपस्वी नहीं होते हुए भी, तपस्वी कहलावे।

25. शक्ति होते हुए भी गुरुजनादि तथा स्थविर, ग्लान मुनि का विनय वैयावच्च करे नहीं और कहे कि इन्होंने मेरी वैयावच्च नहीं की थी–ऐसा अनुकम्पा रहित होवे।

26. चार तीर्थ में भेद पड़े–ऐसी कथा–क्लेशकारी वार्त्ता करे।

27. अपनी प्रशंसा के लिए तथा दूसरे को प्रसन्न करने के लिए वशीकरणादि प्रयोग करे।

28. मनुष्य तथा देव सम्बन्धी भोगों की तीव्र अभिलाषा करे।

29. महाऋद्धिवान्–महायश के धनी देव हैं, उनके बलवीर्य की निन्दा करे, निषेध करे।

30. अज्ञानी जीव, लोगों से पूजा–प्रशंसा प्राप्त करने के लिए देव को नहीं देखने पर भी कहे कि ''मैं देव को देखता हूँ'' तो महा मोहनीय कर्म बाँधे।

(31) इकत्तीसवें बोले-सिद्ध भगवान के इकत्तीस गुण- आठ कर्म की इकत्तीस प्रकृतियाँ नष्ट होने से ये गुण प्रकट होते हैं। वे इकत्तीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-

ज्ञानावरणीय कर्म की पाँच प्रकृति-1. मतिज्ञानावरणीय 2. श्रुतज्ञानावरणीय 3. अवधिज्ञानावरणीय 4. मन:पर्यायज्ञानावरणीय और 5. केवलज्ञानावरणीय।

दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृति-1. निद्रा 2. निद्रा-निद्रा 3. प्रचला 4. प्रचला-प्रचला 5. स्त्यानगृद्धि 6. चक्षुदर्शनावरणीय 7. अचक्षुदर्शनावरणीय 8. अवधिदर्शनावरणीय और 9. केवल-दर्शनावरणीय।

वेदनीय कर्म की दो प्रकृति-1. सातावेदनीय और 2. असातावेदनीय।

मोहनीय कर्म की दो प्रकृति-1. दर्शनमोहनीय और 2. चारित्र मोहनीय।

आयु कर्म की चार प्रकृति-1. नरकायु 2. तिर्यंचायु 3. मनुष्यायु और 4. देवायु।

नामकर्म की दो प्रकृति-1. शुभनाम और 2. अशुभनाम।

गोत्रकर्म की दो प्रकृति-1. उच्च गोत्र और 2. नीच गोत्र।

अंतराय कर्म की पाँच प्रकृति-1. दानान्तराय 2. लाभान्तराय 3. भोगान्तराय 4. उपभोगान्तराय और 5. वीर्यान्तराय।

(32) बत्तीसवें बोले-बत्तीस प्रकार का योग संग्रह-

1. लगे हुए पापों का प्रायश्चित्त लेने का संग्रह करे।
2. दूसरे के लिये हुए प्रायश्चित्त को किसी ओर को नहीं कहने का संग्रह करे।
3. विपत्ति आने पर भी धर्म में दृढ़ रहने का संग्रह करे।
4. निरपेक्ष तप करने का संग्रह करे।
5. सूत्रार्थ ग्रहण करने का संग्रह करे।
6. शुश्रूषा (शरीर की शोभा) टालने का संग्रह करे।
7. अज्ञात कुल की गोचरी करने का संग्रह करे।
8. निर्लोभी होने का संग्रह करे।
9. बावीस परीषह सहने का संग्रह करे।
10. साफ दिल (सरलता) रखने का संग्रह करे।
11. सत्य-संयम रखने का संग्रह करे।

12. सम्यक्त्व निर्मल रखने का संग्रह करे।

13. समाधि सहित रहने का संग्रह करे।

14. पंचाचार पालने का संग्रह करे।

15. विनय करने का संग्रह करे।

16. धैर्य रखने का संग्रह करे।

17. वैराग्य भाव रखने का संग्रह करे।

18. शरीर को स्थिर रखने का संग्रह करे।

19. विधि पूर्वक अच्छे अनुष्ठान करने का संग्रह करे।

20. आश्रव रोकने का संग्रह करे।

21. आत्मा के दोष टालने का संग्रह करे।

22. सभी विषयों से विमुख रहने का संग्रह करे।

23. अहिंसा आदि मूल गुण रूप प्रत्याख्यान करने का संग्रह करे।

24. द्रव्य से उपधि, भाव से गर्वादि त्यागने का (उत्तरगुण धारने का) संग्रह करे।

25. अप्रमादी बनने (व्युत्सर्ग–ममता त्याग) का संग्रह करे।

26. काले-काले (समय पर) क्रिया करने का संग्रह करे।

27. धर्मध्यान ध्याने का संग्रह करे।

28. संवर करने का संग्रह करे।

29. मारणान्तिक रोग होने पर भी मन को क्षुभित नहीं बनाने का संग्रह करे।

30. स्वजनादि को त्यागने का संग्रह करे।

31. लिये हुए प्रायश्चित्त को पार लगाने का संग्रह करे।

32. आराधक पण्डित मरण होवे वैसी आराधना करने का संग्रह करे।

(33) तेतीसवें बोले-आशातना तेतीस प्रकार की-

1. गुरु या बड़ों के सामने शिष्य अविनय से चले।

2. गुरु आदि के बराबर चले।

3. गुरु आदि के पीछे भी अविनय से चले।

4-6. गुरु आदि के आगे-पीछे या बराबर अविनय से खड़ा रहे।

7-9. गुरु आदि के आगे, पीछे या बराबर अविनय से बैठे।

10. बड़ों के साथ शिष्य स्थण्डिल जावे और उनसे पहले शौचकर्म कर के आगे चला आवे।

11. गुरु के साथ शिष्य बाहर गया हो और पीछे लौटने पर ईर्यापथिकी पहले प्रतिक्रमे।

12. कोई पुरुष उपाश्रय में आवे तब उनसे गुरु से पहले ही शिष्य बोले।

13. रात्रि के समय जब गुरु कहे–'अहो आर्य! कौन नींद में है और कौन जाग रहा है?' तब आप जागते हो, तो भी नहीं बोले।

14. आहारादि लाकर उसकी आलोचना पहले अन्य मुनि के सामने करे और बाद में गुरु के समक्ष करे।

15. आहारादि पहले अन्य मुनि को बतावे और बाद में गुरु को बतावे।

16. आहारादि के लिए पहले अन्य मुनि को आमन्त्रण दे और बाद में गुरु को दे।

17. गुरुजनों को पूछे बिना ही अन्य मुनियों को आहारादि देवे।

18. बड़ों के साथ भोजन करते समय सरस, मनोज्ञ आहार, स्वयं अधिक तथा शीघ्र करे।

19. गुरुजन आदि के पुकारने पर भी मौन रहे।

20. गुरुजन आदि के बुलाने पर अपने आसन पर बैठे ही कहे–''मैं यहाँ हूँ'', परन्तु आसन छोड़कर उनके पास जावे नहीं।

21. गुरु के बुलाने पर जोर से तथा अविनय से कहे कि 'क्या कहते हो?'

22. गुरु आदि कहे–'हे शिष्य! यह काम (वैयावच्चादि) तुम्हारे लिए लाभकारी है, इसे करो, तब कहे कि–'यदि लाभकारी है, तो आप ही क्यों नहीं कर लेते।'

23. शिष्य, बड़ों के साथ कठोर–कर्कश भाषा बोले।

24. शिष्य, गुरुजन के साथ वैसे ही शब्द बोले, जैसे गुरुजन शिष्य के साथ बोलते हैं।

25. गुरुजन धर्मोपदेश देते हों तब सभा में ही कहे कि 'आप जो कहते हो वैसा उल्लेख कहाँ है?'

26. गुरुजन से व्याख्यान में कहे कि–'आप तो भूलते हो, यह कहना सत्य नहीं है।'

27. गुरुजन के व्याख्यान को ध्यान से नहीं सुन कर उपेक्षा करे।

28. गुरुजन व्याख्यान देते हों, तब सभा में भेद डालने के लिए कहे–"महाराज! गोचरी का या अमुक काम का समय हो गया है।"

29. गुरुजन व्याख्यान देते हों, तब श्रोताजन के मन को व्याख्यान से हटाने की चेष्टा करे।

30. गुरुजन का व्याख्यान पूरा नहीं हुआ हो, उसके पूर्व ही आप व्याख्यान शुरू कर दे।

31. गुरुजन आदि की शय्या–आसन को पाँव से ठुकरावे।

32. बड़ों की शय्या पर आप खड़ा रहे, बैठे, सोए।

33. गुरु के शयन–आसन से अपना शयन–आसन ऊँचा करे या बराबर (समान) करे और उस पर सोए, बैठे तो आशातना लगे।

★☆★☆★

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
के विविध सेवा सोपान

जिनवाणी हिन्दी मासिक पत्रिका का प्रकाशन

जैन इतिहास, आगम एवं अन्य सत्साहित्य का प्रकाशन

अखिल भारतीय श्री जैन विद्वत् परिषद् का संचालन

उक्त प्रवृत्तियों में दानी एवं प्रबुद्ध चिन्तकों के रचनात्मक सक्रिय सहयोग की अपेक्षा है।

सम्पर्क सूत्र
मंत्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार
जयपुर-302003 (राजस्थान)
दूरभाष : 0141-2575997, फैक्स : 0141-4068798
ई-मेल : sgpmandal@yahoo.in